संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी
वर्ष : ९
अंक : ६७
जुलाई १९९८

गुरुपूर्णिमा विशेषांक
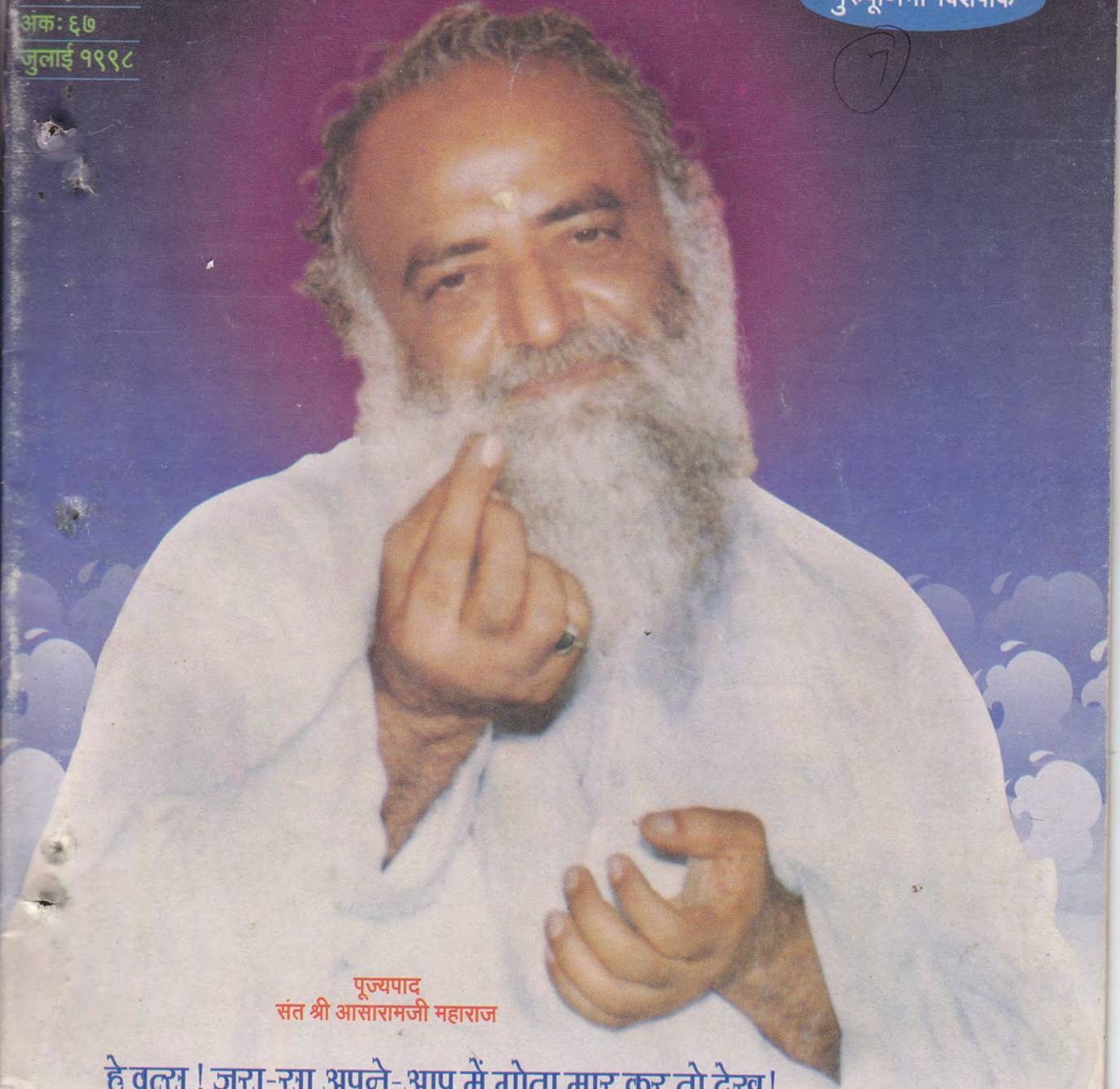
पूज्यपाद
संत श्री आसारामजी महाराज

हे वत्स ! जरा-सा अपने-आप में गोता मार कर तो देख!
निहाल हो जाएगा... खुशहाल हो जाएगा प्यारे!

तीसरे होते हैं जिज्ञासु : कुछ विशेष दृढ़तावाले होते हैं जो दृढ़ विवेक-वैराग्य का सहारा लेकर उस प्रवाह से बच निकलते हैं और किनारे लगे रहने की कोशिश करते हैं वे जिज्ञासु हैं। फिर प्रवाही लोग उनको खींचते हैं कि : 'हम बहे जा रहे हैं और आप क्यों किनारे लटके हो ? देखो, हम कैसे मजे से बह रहे हैं ! मजा आयेगा... आप भी आ जाओ... चलो, वैसे तो हम भी किनारे आना चाहते हैं। जब आएँगे तब आएँगे लेकिन अभी तो आप आ जाओ।'

अगर जिज्ञासु उनके चक्कर में आ जाता है तो वह कर्मियों की लाईन में आ जाता है और सावधान नहीं रहा तो प्रवाही भी हो सकता है। अगर वह अडिग रहता है तो वही जिज्ञासु मुमुक्षु बनकर फिर मुक्त हो जाता है, ब्रह्मज्ञानी हो जाता है। **ब्रह्मज्ञानी है चौथा प्रकार।**

ऐसे ज्ञानी महापुरुष पहले तीन प्रकार के लोगों- प्रवाही, कर्मी, जिज्ञासु को जानते हैं और सबको अपने-अपने ढंग से किनारे लगाने में लगे रहते हैं। यदि सब मिलकर उनसे कहें कि : 'आप भी हमारे साथ चलो' तो वे सबकी बात टालेंगे नहीं वरन् कहेंगे कि : 'हाँ हाँ, आएँगे लेकिन पहले तुम किनारे लग जाओ, फिर हम देखेंगे कि आना है कि नहीं आना है।' उन्हें बोलते हैं ज्ञानी। ऐसे ज्ञानी तो कभी-कभी, कहीं-कहीं मिलते हैं। श्रीमद् भगवद्गीता में भी आता है :

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

'हजारों मनुष्यों में कोई एक मेरी प्राप्ति के लिये यत्न करता है। उन यत्न करनेवाले योगियों में भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझे तत्त्व से, अर्थात् यथार्थ रूप से जानता है।' (गीता : ७.३)

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

'बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त हुआ पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है इस प्रकार मुझको भजता है वह महात्मा अति दुर्लभ है।'

(गीता : ७.१९)

ऐसे महापुरुषों के हृदय की व्यथा को कवि 'काग' ने गाते हुए कहा है :

अमे निसरणी बनीने दुनियामां ऊभा,
पण चड़नारा कोई ना मळ्या रे जी...
दादरो बनी अमे खीला खाधा,
पण तपस्यानां फळ ना फळ्यां रे जी...
अंगड़ां कपाव्यां अमे आग्युंमां ओराणा
अमे जन जननी थाळीए पीरसाणा
पण जमनारा कोई ना मळ्या रे जी...
'काग' सरगापुरी छोड़ी अमे पतितो ने काजे
अमे हेमाळेथी देहने पड़ता मेल्या
पण झीलनारा कोई ना मळ्या रे जी...

कवि 'काग' कहते हैं : ''हम सोपान बनकर दुनिया में रहे खड़े किन्तु चढ़नेवाला कोई न मिला। हमने सीढ़ी बनकर खीलें ठुकवायीं किन्तु तपस्या का फल नहीं फला। शरीर कटवाकर हम आग में पकाये गये किन्तु खानेवाला कोई न मिला। पतितों के उद्धार हेतु हमने स्वर्ग को भी छोड़कर हिमालय से अपने आपको गिराया किन्तु झेलनेवाला कोई न मिला।''

वे महापुरुष एकांत में अपने ब्रह्मानंद की मस्ती छोड़कर आपके बीच आते हैं, आपके हजार-हजार प्रश्न सुनते हैं, जवाब देते हैं। प्रसाद लेते-देते हैं। क्यों ? इसीलिए कि शायद आप उस बहते प्रवाह की धारा में से थोड़ा किनारे लग जाओ। नहीं तो, उन्हें ऐसी मजदूरी करने की क्या जरूरत ? ऐसे संत महापुरुष दिन-रात दूसरों के कल्याण हेतु परिश्रम करते रहते हैं, फिर भी उनके लिये तो यह सब सहज स्वाभाविक एवं विनोद मात्र होता है।

विनोद मात्र व्यवहार जिसका, ब्रह्मनिष्ठ प्रमाण।

'मेरे गुरुदेव ने अगर ऐसा नहीं किया होता तो शायद मेरी जिज्ञासा पूरी नहीं होती' ऐसा समझकर ही अब ब्रह्मवेत्ता लोग आपके लिये यह सब कर रहे हैं। अतः आप कृपा करके मेरे गुरुदेव का दिखाया हुआ ज्ञानरूपी तना पकड़कर संसार-प्रवाह से बचकर किनारे लग जाना। नियम-निष्ठारूपी आधार लेकर अपने उद्देश्य को याद करके किनारे की ओर आगे बढ़ते रहना। आपका उद्देश्य आत्मा-परमात्मा में विश्रांति पाना है न कि संसार के प्रवाह में बहना, बार-

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ९
अंक : ६७
९ जुलाई १९९८

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ८-००

सदस्यता शुल्क
भारत, नेपाल व भूटान में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) आजीवन : रू. ५००/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 30
(२) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं पूर्वी प्रिन्टर्स, राजकोट में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction.

पूजा के पुष्प

लाबयान हैं उर-आँगन में अमृतवर्षा करनेवाले सद्गुरु !

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

दुःखदायी इन्द्रिय-विषयों से, पीड़ादायी तुच्छ विकारों से एवं अशांति उत्पन्न करनेवाली वासना से लघु बने हुए हमारे जीवन को आत्मविचार के उत्तुंग शिखरों पर बैठाकर 'स्व' में स्थित करने का गुरुकार्य करने की जिनमें क्षमता है वे हैं गुरु। जीव को शाश्वत, नित्य एवं अनंत सुख की ओर ले जानेवाली जो विभूति हैं वे हैं गुरु। मरणधर्मा देह में ही ब्रह्म-अमृत का अनुभव जो कराते हैं वे हैं गुरु। अव्यक्त, अजन्मा आत्मा की खबर जो देते हैं वे हैं गुरु।

इस संसार में जिसका कोई सद्गुरु नहीं है, उसका कोई सच्चा हितैषी भी नहीं है। सब होते हुए भी वह अनाथ है। शिष्य का वास्तविक कल्याण किसमें है इसका पता केवल सद्गुरु को ही होता है। यही कारण था कि प्राचीन काल में कई चक्रवर्ती राजा राजपाट छोड़कर गुरु की शरण खोजते थे। गुरु के द्वार पर झाड़ू लगाते थे, गुरु के लिए लकड़ियाँ बीनते थे... जितने भी महान् पुरुष हो गये उनके जीवन में सद्गुरु का स्थान अवश्य था। भगवान श्रीराम के गुरु वशिष्ठजी महाराज थे तो भगवान श्रीकृष्ण के गुरु थे सांदीपनि ऋषि। संत ज्ञानेश्वर महाराज के गुरु निवृत्तिनाथ थे तो स्वामी विवेकानंद के गुरु थे श्री रामकृष्ण परमहंस। राजा जनक के गुरु श्री अष्टावक्रजी महाराज थे तो पूज्य लीलाशाहजी बापू के गुरु थे स्वामी केशवानंदजी महाराज।

सद्गुरु के बिना सच्ची समझ नहीं हो सकती। कबीरजी ने ठीक ही कहा है :

सहजो कारज संसार को, गुरु बिन होत नाँही।
हरि तो गुरु बिना क्या मिले, समझ ले मन माँही ॥

जीवन में आनंद, माधुर्य, शांति एवं समता का अनुभव सद्गुरु के कारण ही होता है। सद्गुरु की शरण कितनी महत्त्वपूर्ण है इसे समझाते हुए कबीरजी ने कहा है :

जो तोहि सत्गुरु सत्त लखाव,
ताते न छूटे चरन भाव।
अमरलोक फल लावै चाव,
कहँहि कबीर बूझै सो पाव ॥

मीराबाई ने भी अपने गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है :

गुरु मिलिया रैदासजी, दीन्ही ज्ञान गुटकी।

इन्हीं रैदासजी ने भी कहा है :

गुरु सभु रहसि अगमहि जानै।

अर्थात् 'अगम (आत्मा-परमात्मा) की पहचान के सभी रहस्य गुरु जानते हैं।'

कर्नाटक में तो गुरु का स्थान भगवान की अपेक्षा भी ऊँचा माना जाता है। वैष्णव संप्रदाय के महान् आचार्य श्री वल्लभाचार्यजी ने तो यहाँ तक कहा है :

''भगवान में ३० गुण हैं जबकि ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु में ३६ गुण होते हैं। भगवान जिसको जीवरूप में भेजते हैं उसे सद्गुरु जीवन-मरण की शृंखला से मुक्त करते हैं। भगवान कर्म का फल देते हैं जबकि गुरु तो कर्म के बंधन ही काट डालते हैं।''

सद्गुरु करोड़ों जन्मों के कार्य को एक ही जन्म में पूरे करवाकर सच्चिदानंद की ओर ले जाते हैं। सद्गुरु सत् से कर्मों की शुद्धि, चित् से ज्ञान की शुद्धि एवं आनंद से सुख की शुद्धि कराके यानी शिष्य के सत्-चित्-आनंद को विकसित कराके उसके पुण्यकर्मों को महका देते हैं। हजारों जन्मों के माता-पिता, साथी-मित्र भी जो नहीं दे सकते हैं वह सद्गुरु सहज भाव से हँसते-हँसते दे देते हैं। कैसी अनोखी कला है देने की !

सद्‌गुरु मूर्ख से भी सीखते हैं एवं ज्ञानी को भी उपदेश करते हैं ! मच्छर से भी डरते हैं और सिंह से तो कुश्ती करते हैं ! अपने पास कुछ भी नहीं और माँगनेवाले को सब कुछ दे देते हैं ! जरूरत पड़े तो भीख माँगकर भी खा लेते हैं एवं भिखारी को सम्राट बना देते हैं ! उनकी तुलना किससे की जाय ?

उनके संकल्प में, विचार में असीम सामर्थ्य होता है। उनकी दृष्टि भी अत्यंत पुण्यशाली होती है।

नजरों से वे निहाल हो जाते हैं।
जो सद्‌गुरु की निगाहों में आ जाते हैं॥

सद्‌गुरु की महिमा को जानते हुए हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व. श्री गुलजारीलाल नंदा ने कहा था : ''मुझे भी किसी ब्रह्मज्ञानी श्री लीलाशाह बापू जैसों का संग मिला होता तो मैं भी स्वामी विवेकानंद या संत श्री आसारामजी बापू जैसा बन गया होता...''

ऐसे सद्‌गुरुओं की महिमा पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के एक जीवन-प्रसंग से प्रगट होती है :

एक संत-सम्मेलन में पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू को एक पंजाबी संत ने पूछा : ''हम सभी के माता-पिता हैं तो भगवान के भी तो माता-पिता होंगे न ? मूल में भगवान के माता-पिता कौन हैं ?''

तब पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू ने सहजता से जवाब दिया : ''भगवान के माता-पिता हैं संत।''

''कैसे ?''

''दशरथ को राम की प्राप्ति का मार्ग तो संत ने ही बताया था न ?''

...और संत बनाने में सद्‌गुरु भी कहाँ ढील रखते हैं ? वे नश्वर संसार में ही शाश्वत् की खबरें सुनाते हैं... परम तत्त्व परमात्मा की मुलाकात करा देते हैं। कितना उपकार है ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों की दृष्टि में ! घोर से घोर पातकी भी यदि पापों का बड़ा पहाड़ लेकर ब्रह्मवेत्ता के पास जाता है तो ब्रह्मवेत्ता की नजर एवं वाणी से वह निष्पाप होने लगता है और उसके पापों का पहाड़ देखते-ही-देखते अदृश्य होने लगता है।

'नारदभक्तिसूत्र' में तो यहाँ तक कहा गया है :

महापातकैः युक्ता वा युक्ता वा चोपपातकैः ।
परं पदं प्रत्यान्त्येव महद्भिरवलोकिताः ॥
कलेवरं वा तद्भस्म तद्धूमंवापिसत्तम् ।
यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परां गतिम् ॥

'सत्पुरुषों में श्रेष्ठ श्री नारद ! जिन पर अंतकाल में महापुरुषों की दृष्टि पड़ जाती है वे महापातक या उपपातक से युक्त होने पर भी अवश्य परम पद को प्राप्त हो जाते हैं। महात्मा पुरुष यदि किसीके अंतकाल में उसके मृत शरीर को या शरीर की भस्म को अथवा उसके धुएँ को भी देख लें तो वह सद्‌गति को प्राप्त हो जाता है।' **(नारद० पूर्व० प्रथम : ७.७४, ७५)**

भगवान वशिष्ठजी 'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में श्रीरामचंद्रजी से कहते हैं :

''हे रामजी ! ज्ञानीजनों का बहुत बड़ा उपकार है। उनकी सेवा खूब सावधानीपूर्वक करनी चाहिए।''

व्यवहार की कुशलता, राज्य-शासन चलाने की योग्यता, जीवन में दिव्यता, विचारवान जैसी दृष्टि, इहलोक एवं परलोक में सफल होने की कुंजियाँ भी ब्रह्मवेत्ता सद्‌गुरुओं की ही तो देन हैं। उनकी पूजा करके आदर करना यही गुरुपूर्णिमा का पूजन है।

ब्रह्मवेत्ता सद्‌गुरुओं की, सत्पुरुषों की अत्यंत दुर्लभता का वर्णन जगद्‌गुरु श्रीमद् आद्य शंकराचार्य ने 'विवेकचूड़ामणि' में किया है :

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम् ।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः ॥

'भगवत्कृपा ही जिनकी प्राप्ति का कारण है, वे मनुष्यत्व, मुमुक्षत्व (मुक्त होने की इच्छा) और महान् पुरुषों का संग - ये तीनों ही दुर्लभ हैं।'

ऐसे दुर्लभ महापुरुष की, सद्‌गुरु की महिमा का वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है ?

परमात्मा के आनंद को छूकर आती हुई ब्रह्मज्ञानी सद्‌गुरु की वाणी, उनकी दिव्य देह को छूकर आती हुई हवा भी अंतःकरण को शुद्ध करने की क्षमता रखती है। ऐसे शुद्ध हुए अंतःकरण में विचार भी शुद्ध स्फुरित होते हैं। शुद्ध विचारों से शुभ कर्मों का उदय होता है एवं शुभ कर्मों का फल भी शुभ होता है। हरि प्रसन्न होते हैं तो भक्त को भौतिक पदार्थ दे देते हैं परन्तु सद्‌गुरु प्रसन्न होते हैं तो साधक-शिष्य को हरि ही दे देते हैं।

गुरु पूर्णिमा के दिन शिष्य को गुरु के द्वार पर अवश्य

जाना चाहिए। उस दिन गुरु वर्षभर के दौरान हुए अपने अनुभव का निचोड़ संकेत द्वारा, संकल्प द्वारा, आदेश द्वारा, वातावरण या दृष्टि द्वारा शिष्य को देकर, उसे आध्यात्मिक यात्रा में अग्रसर होने के लिए प्रेरित करते हैं, उत्साहित करते हैं। सद्गुरु इस दिन सुकर्मी को सत्कर्मों में प्रवृत्त बनने का संकेत करते हैं, भक्त को भक्ति के रस में सराबोर कर देते हैं एवं ज्ञान की जिज्ञासावाले के लिए ज्ञान के द्वार खोल देते हैं।

'मनुस्मृति' में भगवान मनु ने कहा है :

''गुरु के दर्शन के लिए जाओ तब खाली हाथ मत जाना। दूसरा कुछ नहीं तो पानी का घड़ा ही ले जाना या तो पादुका ले जाना।''

...किन्तु सद्गुरु को इनमें से कुछ भी नहीं चाहिए। वे तो कहते हैं :

तू मुझे अपना उर आँगन दे दे मैं अमृत की वर्षा कर दूँ।

'आप यदि देना ही चाहो तो मुझे अपनी मान्यताएँ दे दो, अपना अहं दे दो ताकि मैं अपने 'स्व' के अनुभव से आपका हृदय छलका दूँ।'

जब तक संसार में ब्रह्मविद्या की जिज्ञासा बनी रहेगी तब तक सद्गुरुओं की पूजा भी होती ही रहेगी। ब्रह्मज्ञान का सत्कार ही गुरु का सत्कार है एवं गुरु का आदर ही ब्रह्मज्ञान का आदर है।

समाज की सच्ची सेवा तो ब्रह्मज्ञानी ही कर सकते हैं। आज केवल भूखे को अन्न एवं गरीब को वस्त्र देकर सेवा का संतोष मान लें ऐसे गुरुओं की आवश्यकता नहीं है, वरन् दुःखियों के अश्रु पोंछें, अभक्त को भक्त बना दें, अयोगी को योगी बना दें, अज्ञानी को ज्ञानी बना दें, हारे हुए में हिम्मत भर दें, हताश में उत्साह का संचार कर दें, भयभीत को निर्भय बना दें, अशांत को शांति का दान दे दें, शुष्क में रस भर दें एवं रसिक को रसदाता के साथ मिला दें ऐसे गुरु की आवश्यकता है। उपदेश के साथ निहित अपने शुभ संकल्प, स्वानुभूति एवं करुणा से समाज को उन्नत करके ईश्वर में ज़नसाधारण का विश्वास दृढ़ कर दें ऐसे गुरु की आवश्यकता है। इसीलिए गुरुपूर्णिमा जैसे उत्सव एवं व्रत का महत्त्व है। आप सभी को गुरुपूर्णिमा की खूब-खूब बधाई हो...

श्री ज्ञानेश्वर महाराज की गुरुभक्ति

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

सद्गुरु के प्रति अनुभवात्मक भावना को श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने ज्ञानेश्वरी गीता में ओवियों द्वारा व्यक्त किया है।

जीवन में गुरु का स्थान कितना महत्त्वपूर्ण है और वे पूर्ण पुरुष शिष्य को नर में से नारायण बनाकर जन्म-मृत्यु की शृंखला से मुक्त करते हैं वह ओवियों द्वारा संत श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने समझाया है। उनकी गुरुभक्ति इतनी उच्चतम प्रकार की थी कि सब शिष्यों को उससे प्रेरणा पाकर अपनी गुरुभक्ति को इस प्रकार ढालने का संनिष्ठ व प्रामाणिक प्रयत्न करना चाहिए।

संत श्री ज्ञानेश्वर महाराज के गुरु श्री निवृत्तिनाथ थे। उनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है : (१) आदिनाथ शंकर भगवान (२) श्री मत्येन्द्रनाथ, (३) श्री गोरखनाथ, (४) श्री गहिनीनाथ, (५) श्री निवृत्तिनाथ, (६) श्री ज्ञानेश्वर।

श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने अपनी संपूर्ण गुरु-परम्परा को हृदयपूर्वक प्रणाम करके आशीर्वाद माँगे हैं और अकर्त्ता भाव से स्वीकार किया है कि '**ज्ञानेश्वरी गीता**' गुरु-परम्परा की असीम कृपा का फल मात्र है।

'ज्ञानेश्वरी गीता' की गुरुभक्ति की प्रथम ओवी में आता है :

मज हृदयीं सद्गुरु। जेणे तारिलां हा संसार पुरु॥
म्हणऊनी विशेषे अत्यादरु। विवेकावरी॥

'जिन सद्‌गुरु ने मुझे संसार की बाढ़ में से तारा है तथा परम तत्त्व को पाने के लिए आत्मा-अनात्मा, शाश्वत-नश्वर, सत्य-असत्य का विवेक जगाने की कुंजी दिखायी है वे सद्‌गुरु मेरे हृदय में हैं।'

संत श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने **'ज्ञानेश्वरी-गीता'** के भिन्न-भिन्न अध्यायों में २८४ ओवियों में गुरु के प्रति कृतज्ञता वर्णित की है और १३ वें अध्याय में उनकी गुरुभक्ति पूर्ण कला से सुविकसित होकर खिले हुए सुगंधमय सुंदर पुष्प के समान महकी है।

श्री ज्ञानेश्वर महाराज की गुरुभक्ति की गहराई निम्नांकित वर्णन में प्रगट हुई है :

''गुरुसेवा समस्त भाग्यों की जन्मभूमि है क्योंकि गुरुसेवा ही शोकग्रस्त जीव को ब्रह्मस्वरूप बनाती है।

विरहिणी पतिव्रता स्त्री जिस प्रकार पति का ही चिंतन करती है उसी प्रकार मैं अविरत गुरु के विचारों में ही रहता हूँ। इतना ही नहीं, गुरु जिस दिशा में रहते हैं उस दिशा से आनेवाले पवन को सामने जाकर नमस्कार करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ : 'हे पावन पवनदेव ! मेरे घर पधारकर मेरा घर पवित्र करें।' जिस दिशा में गुरु रहते हैं उस दिशा के साथ पागल की नाईं वार्तालाप करता हूँ और गुरु-दर्शन के लिए तड़पता रहता हूँ। वियोग का एक-एक क्षण एक-एक युग से बड़ा लगता है। गुरु के गाँव से या गुरु के दर्शन करके आये हुए व्यक्ति के मिलने से मुझे ऐसा लगता है मानो मृत्युशैया पर पड़े हुए रोगी को जीवनदान मिला हो।

गुरु का नाम मात्र सुनते ही मैं इतना प्रफुल्लित हो जाता हूँ कि मुझे लगता है आकाश का भी आलिंगन कर लूँ। गुरु के प्रति ऐसी प्रीति रखनेवाले शिष्य के लिए ज्ञान सेवक होकर रहता है।

गुरु की एक-एक सेवा उत्तमोत्तम प्रकार से करने की तत्परता दिखाते हुए सोचता हूँ कि गुरुजी के समस्त परिवार के रूपों को मैं अकेला ही धारण करूँ। गुरुजी के उपयोग में आनेवाले सर्व साधनों के सर्व रूप भी मैं अकेला ही धारण करूँ। गुरुजी की दृष्टि प्रत्येक क्षण मेरे ऊपर रहे और मेरी दृष्टि प्रत्येक क्षण गुरुजी के ऊपर रहे। मेरे गुरु केवल मेरे ही रहें। अपने गुरु की सेवा को मैं अपने सात्त्विक समर्पित गुणों की शिल्पकला से विभूषित करूँगा। अपने गुरु का दास मैं अकेला ही बनूँगा। गुरु के घर की दहलीज मैं बनूँगा, द्वार भी मैं ही बनूँगा। गुरु की पादुका भी मैं ही बनूँगा और छत्र भी मैं ही बनूँगा। गुरु पर चमर डुलानेवाला भी मैं और आगे-पीछे दौड़नेवाला हजूरिया भी मैं ही बनूँगा। गुरु का सामान उठानेवाला सेवक मैं और थूँकदानी भी मैं ही बनूँगा। गुरुजी को स्नान मैं ही कराऊँगा और उनको अलंकारों से सज्जित भी मैं ही कराऊँगा। गुरुजी का खाना मैं बनाऊँगा और परोसने का सेवाकार्य भी मैं ही करूँगा। जब गुरुजी भोजन करें तब पंखा मैं ही झलूँगा और पानबीड़ा भी मैं ही दूँगा। गुरु की जूठन मैं उठाऊँगा और बर्तन भी मैं ही साफ करूँगा। जिस पर गुरुजी आरूढ़ होंगे वह सिंहासन भी मैं ही बनूँगा। प्रत्येक सेवा का उपकरण मैं ही बनूँगा। गुरुदेव के चमत्कार भी मैं ही बनूँगा और सत्संग का शब्दसमूह भी मैं ही बनूँगा। गुरुजी के अंग का जिसे भी स्पर्श होगा वह सब भी मैं और गुरुजी के नयन प्रेम से जिन रूपों का अवलोकन करेंगे वे सब रूप भी मैं ही बनूँगा। भोजन मैं ही बनूँगा और घ्राणेन्द्रिय के लिए समस्त सुवास भी मैं ही बनूँगा।

ऐसे सर्वप्रकार से अपने गुरुदेव की सेवा करके, गुरुजी के उपयोग की सब चीजें मैं ही बनकर सब ओर से उनको व्याप जाऊँगा।

जब तक यह देह है तब तक इसी प्रकार गुरुदेव

की सेवा करूँगा।

अपनी मौत के बाद भी इस शरीर की मिट्टी को पृथ्वी के उस हिस्से में मिलवा दूँगा कि जहाँ पर श्रीगुरु के पुनित चरणों का स्पर्श हो। मेरे गुरुजी विनोद में जिस जल को स्पर्श करेंगे उस जल में अपने शरीर के जल तत्त्व को मिला दूँगा। साधक जिस दीपक से गुरुदेव की आरती उतारते होंगे या जो दीपक श्रीगुरु के मंदिर में प्रज्वलित होगा उस दीपक में मैं अपने तेज तत्त्व को मिला दूँगा। जिस पंखे से या चँवर से श्रीगुरुदेव को हवा की जाती हो उस हवा में मैं अपना पवन तत्त्व मिला दूँगा और जहाँ गुरुदेव का आवास होगा वहाँ मैं अपने आकाश तत्त्व को मिला दूँगा।

जीते-जी या मरने के बाद भी मैं श्रीगुरु की सेवा किये बिना नहीं रहूँगा और एक पल के लिए भी औरों को सेवा नहीं करने दूँगा।''

श्री ज्ञानेश्वरजी महाराज गुरुसेवा पर अधिकाधिक जोर देते हुए एवं सत्‌शिष्य कैसा हो उसकी विशद व्याख्या करते हुए बताते हैं :

''जिसकी भावना में गुरुभक्ति है, जिसके मन में धैर्य है, जो दिन-रात देखे बिना गुरुसेवा में निमग्न रहता है... 'अब सेवा बहुत हो गई' - ऐसा मन में सोचता तक नहीं है और अपने जीवन को भी दाँव पर लगाने में झिझकता नहीं है, जो अपनेको गुरुआज्ञा का निवासस्थान बनाता है, जो अपनी कुलीनता गुरुभक्ति में ही मानता है, जो अपने गुरुभाइयों के साथ सौजन्यता का बर्ताव कर सुजन बनता है और गुरुसेवारूपी व्यसन से ही अविरत व्यसनी बनकर रहता है, जो गुरुसेवा को नित्य-नैमित्तिक कर्म के रूप में स्वीकार करता है, जिसका तीर्थक्षेत्र गुरु, दैवत गुरु, माता गुरु, पिता गुरु, सब गुरु हैं एवं जो गुरुसेवा के सिवाय अन्य कुछ जानता हीं नहीं है, गुरु का द्वार ही जिसके लिए सर्वधर्मों का सार है और गुरुसेवक जिसे भाई से भी अधिक प्यारा है, जिसकी जिह्वा पर दिन-रात गुरुनाम का जप चलता रहता है और गुरुवाक्य ही जिसके लिए शास्त्र है, श्रीगुरु के उच्छिष्ट प्रसाद के आगे समाधि-सुख भी जिसे तुच्छ लगता है, गुरु के स्पर्श से पवित्र हुआ जल जिसे त्रिलोक के समस्त तीर्थों के जल से भी अधिक पावन लगता है, गुरु चलते हों तब जो चरणरज उड़ती है उसे जो मस्तक पर चढ़ाकर अपनेको धन्य मानता है और जिसे इस लाभ के आगे मोक्ष का सुख भी तुच्छ लगता है वही सच्चा सत्‌शिष्य है।''

श्री ज्ञानेश्वर महाराज में गुरुभक्ति की उत्कंठा और तीव्रता इतनी थी कि उन्हें अंत में ऐसा कहना पड़ा :

''गुरुभक्ति की महिमा का कहाँ तक वर्णन करूँ ? वह अनंत है। मेरी सीमित बुद्धि से इतना ही कहा गया है। जिसे गुरुभक्ति की लगन लगी हो, जो गुरुप्रेम में सराबोर हो उसे ब्रह्माण्ड की कोई भी चीज मीठी नहीं लगती। गुरु ही ब्रह्मज्ञान का जन्मस्थान है और गुरुभक्तियोग से ही ज्ञान शोभायमान होता है। गुरुसेवा करनेवाला देव है और ज्ञान उसका भक्त है।

गुरुसेवा में मैं हाथ होते हुए भी लूला, पैर होते हुए भी पंगू, आँख होते हुए भी अंधा और जिह्वा होते हुए भी गूँगा हूँ। फिर भी मेरे गुरुदेव की अहैतुकी कृपा ही मुझे पोषण दे रही है।''

गु*रु*पू*न*म*की पा*व*न*बे*ला*में

गुरुपूर्णिमा के महा पर्व में आशिष गुरु का पायेंगे।
रूप गुरु का निरख-निरख के नैनों की तपन बुझायेंगे॥
पूजेंगे श्रीचरण आपके खुद को पवित्र बनायेंगे।
नयनों में पानी भर-भरके गुरु के चरणों में बरसायेंगे॥
मन से श्रीचरण चूम-चूम के मन ही मन हर्षायेंगे।
कीमत कोई नहीं जिसकी वह 'गुरुकृपा' निधि पायेंगे॥
पारब्रह्म की झलकें सद्गुरु सत्संग से दिखलायेंगे।
वर्षा ऋतु का मौसम उसपे गुरु ज्ञान का जाम पिलायेंगे॥
नस-नस में रोम-रोम में गुरु कृपा जब पायेंगे।
बेखुद हुए साधक सारे तन-मन की स्मृति भुलायेंगे॥
लाल गुरु के देश विदेश से गुरु के आश्रम आयेंगे।
मेरा मैं का भान भुलाके गुरु चरणों में झुक जायेंगे॥

- सागर (कानपुर)

गुरुपूर्णिमा शिष्यों का अनुपम पर्व

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

साधक के लिए गुरुपूर्णिमा एक व्रत और तपस्या का दिन है। उस दिन साधक को चाहिए कि उपवास रखकर गुरु के द्वार जाकर गुरुदर्शन, गुरुसेवा और गुरु-सत्संग का श्रवण करे। उस दिन गुरुदेव की पूजा करने से वर्षभर की पूर्णिमाओं के दिन किए हुए सत्कर्मों के पुण्य का फल मिलता है।

गुरुपूर्णिमा के दिन ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु के संकेत के अनुसार आचरण करें।

तू मुझे अपना उर आँगन दे दे मैं अमृत की वर्षा कर दूँ।

गुरु उर-आँगन माँगें तो दे दो। अपनी मान्यताएँ और अहं को हृदय से निकालकर गुरु के चरणों में अर्पण कर दो। गुरु उसी हृदय में सत्यस्वरूप प्रभु का रस छलका देंगे। गुरु के द्वार पर अहं लेकर जानेवाला व्यक्ति गुरु के ज्ञान को पचा नहीं सकता, हरि के प्रेमरस को चख नहीं सकता।

अपने संकल्प के अनुसार गुरु को मत चलाओ लेकिन गुरु के संकल्प में अपना संकल्प मिला दो तो बेड़ा पार हो जाएगा।

नम्र भाव से, कपटरहित हृदय से गुरु के द्वार जानेवाला कुछ-न-कुछ पाता ही है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

'उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत्-प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्म-तत्त्व को भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे।' (गीता : ४.३४)

जो शिष्य सद्गुरु का पावन सान्निध्य पाकर आदर व श्रद्धा से सत्संग सुनता है, सत्संग-रस का आस्वाद लेता है, उस शिष्य का प्रभाव अलौकिक होता है।

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में भी शिष्य के लक्षण के सम्बन्ध में श्री वशिष्ठजी महाराज कहते हैं :

''जिस शिष्य को गुरु के वचनों में श्रद्धा, विश्वास और सद्भावना होती है उसका कल्याण अति शीघ्र होता है।''

शिष्य को चाहिए कि गुरु, इष्ट, आत्मा और मंत्र इन चारों में ऐक्य देखे। श्रद्धा रखकर दृढ़ता से आगे बढ़े। संत रैदास ने भी कहा है :

हरि गुरु साध समान चित्त, नित आगम तत मूल।
इन बिच अंतर जिन परौ, करवत सहन कबूल॥

समस्त शास्त्रों का सदैव यही मूल उपदेश है कि भगवान, गुरु और संत इन तीनों का चित्त एक समान (ब्रह्मनिष्ठ) होता है। उनके बीच कभी अंतर न समझें, ऐसी दृढ़ अद्वैत दृष्टि रखें। फिर चाहे आरे से इस शरीर को कट जाने का दंड भी क्यों न सहन करना पड़े ?

अहं और मन को गुरु के चरणों में समर्पित करके, शरीर को गुरु की सेवा में लगाकर गुरुपूर्णिमा के इस शुभ पर्व पर शिष्य को एक संकल्प अवश्य करना चाहिए : 'इन्द्रिय-विषयों के लघु सुखों में, बंधनकर्त्ता तुच्छ सुखों में बह जानेवाले अपने जीवन को बचाकर मैं अपनी बुद्धि को गुरुचिंतन में, ब्रह्मचिंतन में स्थिर करूँगा।'

बुद्धि का उपयोग बुद्धिदाता को जानने के लिए ही करें। आज कल के विद्यार्थी बड़े-बड़े सर्टिफिकेट के पीछे पड़ते हैं लेकिन प्राचीन काल में विद्यार्थी संयम-सदाचार का व्रत-नियम पालकर वर्षों तक गुरु के सान्निध्य में रहकर बहुमुखी विद्या उपार्जित करते

थे। भगवान श्रीराम वर्षों तक गुरुवर वशिष्ठजी के आश्रम में रहे थे। वर्त्तमान का विद्यार्थी अपनी पहचान बड़ी-बड़ी डिग्रियों से देता है जबकि पहले के शिष्यों में पहचान की महत्ता वह किसका शिष्य है उस पर से होती थी। आज कल तो संसार का कचरा खोपड़ी में भरने की आदत हो गई है। यह कचरा ही मान्यताएँ, कृत्रिमता तथा राग-द्वेषादि बढ़ाता है और अंत में ये मान्यताएँ ही दुःख में बढ़ावा करती हैं। अतः साधक को चाहिए कि वह सदैव जागृत रहकर सत्संग के संग में, ज्ञानी के सान्निध्य में रहकर परम तत्त्व परमात्मा को पाने का परम पुरुषार्थ करता रहे।

संसार आँख और कान द्वारा अंदर घुसता है। जैसा सुनोगे वैसे बनोगे तथा वैसे ही संस्कार बनेंगे। जैसा देखोगे वैसा स्वभाव बनेगा। जो साधक सदैव आत्म-साक्षात्कारी महापुरुष को ही देखता-सुनता है तो उसके हृदय में बसा हुआ महापुरुषत्व भी देर-सबेर जागृत हो जाता है।

मदालसा ने अपने बच्चों में ब्रह्मज्ञान के संस्कार भर दिये थे। छः में से पाँच बच्चों को छोटी उम्र में ही ब्रह्मज्ञान हो गया था। ब्रह्मज्ञान का सत्संग काम, क्रोध, लोभ, राग, द्वेष, आसक्ति और दूसरी सब बेवकूफियाँ छुड़ाता है, कार्य करने की क्षमता बढ़ाता है, बुद्धि सूक्ष्म बनाता है तथा भगवद्ज्ञान में स्थिर करता है। ज्ञानवान के शिष्य के जितना अन्य कोई सुखी नहीं है और वासनाग्रस्त मनुष्य के जितना अन्य कोई दुःखी नहीं है। इसलिए साधक को गुरुपूनम के दिन गुरु के द्वार जाकर, सावधानीपूर्वक सेवा करके, सत्संग का अमृतपान करके अपना भाग्य बनाना चाहिए।

राग-द्वेष छोड़कर गुरु की गरिमा को पाने का पर्व माने गुरुपूर्णिमा। गुरुपूर्णिमा तपस्या का भी द्योतक है। ग्रीष्म के तापमान से ही खट्टा आम मीठा होता है। अनाज की परिपक्वता भी सूर्य की गरमी से होती है। ग्रीष्म की गरमी ही वर्षा का कारण बनती है। इस प्रकार संपूर्ण सृष्टि के मूल में तपस्या निहित है। अतः साधक को भी जीवन में तितिक्षा, तपस्या को महत्त्व देना चाहिए। सत्य, संयम और सदाचार के तप से अपनी आंतर चेतना खिल उठती है जबकि सुख-सुविधा का भोग करनेवाला साधक अंदर से खोखला हो जाता है। व्रत-नियम से इन्द्रियाँ तपती हैं तो अंतःकरण निर्मल बनता है और मन अमन बनता है। चतुर्मास का आरम्भ भी आज से ही होता है। इस चतुर्मास को तपस्या का समय बनायें। जप, श्रीयोगवाशिष्ठ का पारायण, एक समय भोजन, अनुष्ठान, ऐसा कोई-न-कोई नियम ले लो। पुण्याई जमा करो। परिस्थिति, मन तथा प्रकृति बदलती रहे फिर भी अबदल रहनेवाला अपना जो ज्योतिस्वरूप है उसे जानने के लिए तपस्या करो। जीवन में से गलतियों को चुन-चुनकर निकालो। की हुई गलती को फिर से न दुहराओ। दिल में बैठे हुए दिलबर के दर्शन न करना यह बड़े में बड़ी गलती है। गुरुपूर्णिमा का व्रत इसी गलती को सुधारने का व्रत है।

व्यासपीठ

सत्संग करनेवाले संत-महापुरुष या भगवद्-कथा करनेवाले कथाकार जिस स्थान पर बैठकर सत्संग या कथा करते हैं उस स्थान को 'व्यासपीठ' कहते हैं। यह भी भगवान व्यासजी को सम्मानित करने की रीति है।

व्यासपीठ अत्यंत जिम्मेदारी का स्थान है। व्यासपीठ के ऊपर बैठकर गैरजिम्मेदार कथन करना पाप है, बड़ा अपराध माना जाता है। ब्रह्मवेत्ता व्यासदेव को मान्य न हो ऐसा विचार व्यासपीठ पर से नहीं कहा जाना चाहिए। व्यासपीठ ग्रहण किये हुए वक्ता का वक्तव्य भगवान व्यासजी के चित्त को प्रसन्न करनेवाला, व्यासजी के सिद्धांत को पुष्टि देनेवाला व '**बहुजनहिताय बहुजनसुखाय**' ही होना चाहिए।

व्यासपीठ आजीविका कमाने का साधन नहीं है बल्कि परम तत्त्व का पता देनेवाला एक अति पावन जवाबदारीवाला स्थान है।

व्यासपीठ धर्मपीठ भी है। इस स्थान पर से निंदा, स्तुति, घृणा और खुशामद की बातें नहीं होनी चाहिए।

व्यासपीठाधीश का प्रथम कर्त्तव्य है कि वे श्रोताओं का मन परमात्मा में लगायें। श्रोताओं को सत्कर्म करने के लिए, सत्य व ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रेरित करें।

श्रेष्ठ साधक कैसे बनें ?

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

हजारों-लाखों मनुष्यों में कोई श्रद्धावान भगवत्प्राप्ति की ओर चलता है और ऐसे कई चलनेवालों में से भी कोई-कोई भगवत्तत्त्व को उपलब्ध होता है। बाकी के लोग थोड़ा साधन-भजन-नियम करके यश, धन, सत्ता, परिवार, पुत्र, सौन्दर्य इत्यादि में उलझकर अपने तत्त्व-साक्षात्कार के लक्ष्य से भटककर चौरासी के चक्कर में फिरते रहते हैं। आज भौतिकता के चकाचौंध परिवेश में परमात्म-प्राप्ति की ओर प्राणपन से मानव-मन का जुट पाना मुश्किल है। भले ही हम सत्संग सुन लें, ऊँचे-से-ऊँचा तत्त्वज्ञान सुन लें लेकिन उसमें निष्ठा होना तो दूर, हम उसका मनन भी नहीं कर पाते हैं। क्यों...?

''हमारे पास समय नहीं है।''

''समय क्यों नहीं ?''

''क्या करें ! रोजी-रोटी और परिवार-पुत्र-पुत्री की चिन्ता में, व्यवस्था में समय नहीं मिल पाता।''

हमारा काफी समय नश्वर को सँभालने में बीत जाता है तथा शाश्वत की सुध ही नहीं होती और फिर आज के इन्सान की दिक्कत भी हम समझते हैं। मनुष्य आज इतनी-इतनी परेशानियों, समस्याओं और चिन्ताओं के बोझ से लदा रहता है कि कहाँ सत्संग सुने. ? कब सत्संग को विचारे...? किस तरह जीवन में उतारे...? लेकिन बिना सत्संग, जप, अनुष्ठान, सेवा, स्मरण के जीव की सद्गति कैसे हो ? कैसे उसे सांसारिक झंझटों के बीच परमात्म-शान्ति की अनुभूति हो ? कैसे वह अपने नित्य कर्म में संलग्न रहकर परमात्मा की आराधना से अन्तःकरण को पावन करता रहे ? ये भी विचारणीय प्रश्न हैं।

फिर भी जैसे दिनभर भाग-दौड़ करने के बाद शाम को, रात्रि को हम अपने घर लौट आते हैं वैसे ही जीवन की भाग-दौड़ से हम किस तरह अपने वास्तविक घर में लौट आयें ? यह हमारे लिये विचारणीय है। यह सत्य है कि हम संसार में रहते हैं, इसलिये संसार को छोड़ पाना हमारे लिये संभव नहीं है किन्तु यह भी तो उतना ही वजनदार सत्य है कि हमारा जन्म संसार में उलझकर अपना अमूल्य मनुष्य जन्म गँवाने के लिये तो कतई नहीं हुआ है। कितनी-कितनी छोटी-बड़ी योनियों की यातनाओं को सहकर हमने इस स्वर्णिम अवसर को पाया है। जैसे, कोई देहाती बद्रीनाथ अथवा गंगोत्री-यमुनोत्री जाना चाहे तो पहले उसे अपने घर से प्राथमिक साधनों के द्वारा बस स्टैण्ड पहुँचना पड़ता है। फिर वहाँ से बस द्वारा उसे शहर तक जाना पड़ता है और वहाँ से ट्रेन के द्वारा यात्रा कर उसे हरिद्वार-हृषिकेश पहुँचना पड़ता है और फिर वहाँ से बस पकड़कर १४-१५ घण्टे तक बस में चलता है। फिर बस से उतरकर भी पैदल चढ़ाई करके वह तीर्थ तक पहुँच पाता है। इतना सब कुछ सहने के बाद भी अगर वह बद्रीनाथ, गंगोत्री में जाकर सोये और बिना दर्शन के लौट आए तो आप उसे क्या कहेंगे...?

इतनी शक्ति, धन और समय लगाकर भी खाली हाथ रहे तो गाँववालों को, परिवारवालों को वह क्या मुँह दिखायेगा ?

यही हाल आपका-हमारा है। न जाने कितनी-कितनी माताओं के शरीर से, पिताओं के शरीर से गुजरकर, असहनीय यातनाओं को सहकर हमने यह अनमोल रत्न मानव शरीर पाया है। अपने अन्तर्यामी हरि के द्वार तक पहुँचने का, अपने सच्चे नाथ से साक्षात्कार करने का दुर्लभ अवसर पाया है। ऐसे सुखद संयोग के बाद भी हम सोये रहें अथवा खूब चलने के बाद भी जहाँ जाना था, वहाँ जाने के बजाय सोये ही रहें तो कैसे चलेगा ? जरा तो सोचिये कि परमात्मा

को, गुरु को क्या मुँह दिखाएँगे ? अतः मनुष्य जन्म की सार्थकता इसीमें है कि हम अपने सच्चे स्वरूप का साक्षात्कार करके जीते-जी मुक्त हो जायें।

यदि आपको लगता है कि आप परम तत्त्व को उपलब्ध नहीं हो सकते तो कोई चिन्ता की बात नहीं। यह तो कुछ युक्तियों से और प्रभु की कृपा से सहज हो जाएगा। आप एक श्रेष्ठ, सात्त्विक साधक बननेभर का लक्ष्य बना लें। एक उन्नत, जिज्ञासु साधक बननेभर का संकल्प आपको उस अनुभूति से संपदावान बना देगा जो आपकी अपनी विरासत है, वसीयत है। एक श्रेष्ठ साधक में क्या गुण होना चाहिए ? इस बात को गंभीरतापूर्वक समझ लें क्योंकि पथ पर चलनेवाला ही तो मंजिल को पाता है।

सर्वप्रथम जीवन का लक्ष्य निर्धारित करें। यदि आप एक श्रेष्ठ साधक बनने का लक्ष्य अपने जीवन में रखते हैं तो आप परम तत्त्व के अधिकारी भी बन सकते हैं क्योंकि शुद्ध, सात्त्विक, श्रद्धासंपन्न अन्तःकरण में ज्ञान का सूर्य अपने पूर्ण तेज के साथ प्रज्वलित होता है। ज्यों-ज्यों आप साधना के पथ पर एक-एक कदम आगे बढ़ाते चलेंगे त्यों-त्यों आपमें उस आनंदस्वरूप को जानने की उत्सुकता बढ़ती जाएगी। उत्सुकता जब तीव्र होगी, लालसा जोर पकड़ेगी तो फिर आप उस यार से कहाँ दूर रह पायेंगे ?

प्रतिदिन का नियम निश्चित करें। एक बार संकल्प ले लें कि 'मुझे रोज इतनी मालाएँ करनी हैं। माह में इतने दिन मौन रहना है। एक पखवाड़े में मुझे एक अनुष्ठान करना है। प्रतिदिन इतने समय सत्संग सुनना है। सत्शास्त्रों का मनन-अध्ययन करना है। इतना समय सेवा करना है और व्यवहारकाल में रहते हुए भी मुझे निरन्तर भगवन्नाम, गुरुनाम संकीर्तन, स्मरण करना है और इस नियम को हर स्थिति में पूर्ण करना है। अगर आप नियम ले लेंगे तो आपका मन फालतू संकल्पों-विकल्पों का जाल नहीं बुनेगा। आपको आपके नियम के प्रति चिन्ता रहेगी, उसे पूर्ण करने की सजगता बनी रहेगी। आपके मन में नियम के बहाने परमात्मा से जुड़े रहने का अवसर मिलेगा और इस प्रकार आप भगवान के साथ अनन्य रूप से जुड़ जाएँगे। लेकिन यहाँ यह सावधानी रखनी है कि नियम को पूर्ण करने के अपने ध्येय को आप कहीं एक यांत्रिक रस्म का रूप न दे दें। नियम के पीछे पूर्ण उत्साह, निष्ठा और प्रेमपूर्वक स्मरण-जप होना चाहिए। चिन्ता की लहरें कहीं आपको उस रस से पृथक् न कर दें जो नियम-पालन से, प्रभु के नाम-जप से, कीर्तन से स्वतः ही हृदय में प्रस्फुटित होकर आपको और आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करता है। इस बात का विशेष ख्याल रहे। सब कुछ सहज रूप में होने दें।

नियम में निष्ठा के साथ-साथ जीवन में निःस्वार्थता, पवित्रता, प्रेम, सात्त्विकता, सेवा जैसे सद्‌गुणों को भी विकसित होने दें। आप ध्यान रखें कि हजारों जप-तप और यज्ञ के बाद भी यदि आपमें स्वार्थ है, अपनेको कुछ मानने का, स्वयं को कर्त्ता मानने का अभिमान है तो सब व्यर्थ है। स्वार्थ और अहंकार से हृदय मलिन होता है। स्वार्थ-सिद्धि की आदत आपको सच्चे सुख से वंचित रखती है। पवित्रता से मन में सद्‌विचारों का प्रादुर्भाव होता है। जब आपका मन विषयों का चिन्तन करता है तब वैसे ही विचारों में आप उलझे रहते हैं। विचारों के माध्यम से आप जितने उन्नत बन सकते हैं उतने अन्य साधनों से नहीं। विचारों की उन्नति आपकी उन्नति का मूल है। शुभ, प्रेरणास्पद, प्रखर विचारों के जरिये आप उस मंजिल तक पहुँच सकते हैं जिसे पाने के लिये आपको मनुष्य तन मिला है। प्रेम यानी अपने इष्ट के प्रति श्रद्धा, समर्पण और निष्ठा की पराकाष्ठा। प्रेम संसार के संबंधों से नहीं वरन् संसार के स्वामी से करना है। संसार से तो व्यवहार करना है। इसका अर्थ यह भी नहीं कि हम अपना व्यवहार रूखा बना लें। हमें व्यवहार में भी उतना ही कुशल होना है। मधुर व्यवहार जीवन की माँग है। प्रेम तो वह परम ऊर्जा है जो प्रेमाधीश से भेंट करवा देती है। व्रज में जब ग्वाल-गोपालों के बीच क्रीड़ा होती है तो भगवान भक्तों के प्रेम को बल देने के लिये स्वयं हारकर गोप सखाओं को जिता देते हैं। स्वयं हारकर भगवान वह सब करते हैं जो ग्वाल-गोपाल उनसे करवाते हैं। ग्वाल-गोपाल उनसे बाजी जीतकर भगवान के कन्धों पर चढ़कर सवारी करते

हैं। यह सब निःस्वार्थ प्रेम की बलिहारी नहीं तो और क्या है ? भक्तों के प्रेम के आगे अपराजित ईश्वर भी पराजित हैं ! इसीलिए कहा गया है :

प्रेम न खेतों उपजे, प्रेम न हाट बिकाए।
राजा चहो रंक चहो, शीष दिए ले जाए॥

साधकों को सात्त्विकता का भी ख्याल रखना चाहिए। जप, स्मरण, ध्यान, कीर्तन इत्यादि से शरीर में एक विशेष आभा, सत्त्व विकसित होती है। जहाँ-तहाँ अशुभ स्थान में रहने से, प्रदूषित वातावरण में रहने-बैठने से, विषयी लोगों से अधिक मेल-जोल रखने से, उनके स्पर्श से यह सात्त्विकता और आभा नष्ट हो जाती है जिससे साधक ऊँचाई से गिर जाता है। सात्त्विकता का पूर्ण ख्याल रखें। आहार-विहार और आचरण में, यहाँ तक की विचारों में भी जितनी-जितनी सात्त्विकता होगी उतनी-उतनी आपकी मेहनत कम होती जाएगी और आप सत्य के रास्ते सफल होते जायेंगे। परोपकार और सेवा तो साधक के लिए अपने क्षुद्र अस्तित्व को मिटाने की परम औषधि है। सेवा से अन्तःकरण की शुद्धि होती है और ज्ञान से शुद्ध अन्तःकरण का सीधा संबंध है। सेवा के एवज में साधक सबमें एक अभेद सत्ता का दर्शन कर सकता है। यह सेवा ही है जो सर्वेश्वर तक पहुँचने का पथ प्रशस्त करती है। निष्काम भाव से सभी की सेवा करने से स्वयं की सेवा का भी द्वार खुल जाता है।

इन गुणों के अलावा साधक के जीवन में निर्भयता, निश्चिंतता, प्रसन्नता और अटूट श्रद्धा की भी आवश्यकता होती है। जीवन में पग-पग पर चिन्ता, भय और परेशानी के स्थान पर निर्भयता का स्थान हो। ऐसा जीवन किस काम का जो डर, कमजोरी और चिन्ताओं के बोझ तले दबा हो ? जीवन तो एक गुलाब की तरह खिला हुआ होना चाहिए। मनुष्य जन्म पाकर भी भयभीत, चिन्तित रहे तो धिक्कार है ! निश्चिंतता से सूझ-बूझ बढ़िया रहती है। चिन्ता के स्थान पर चिन्तन हो। आप संसार की परेशानियों से जितना-जितना हटकर परमात्मा में स्थिर होते जाएँगे उतनी-उतनी आपकी चिन्ताएँ स्वतः समाप्त होती जाएँगी। मनुष्य जन्म में यदि परेशानियाँ नहीं होंगी तो आपके व्यक्तित्व का विकास कैसे हो पाएगा ? सत्संग और सद्गुरुओं का सान्निध्य विघ्न-बाधाओं के बीच मुस्कुराकर जीना सिखाता है। अपने मुख को कभी भी मलिन मत करो। निराशावादी विचारों को उखाड़ फेंको। सदा मुस्कुराते रहो। दुःखी और शोकवान तो वे रहें जिनके माई-बाप मर गये हैं। आपके माई-बाप तो परमेश्वर विश्वनाथ आपके साथ हैं... पलभर में मीठी मुस्कान से पीड़ाओं को हरनेवाले हैं... फिर भय किस बात का ?

इस मंत्र को हृदय में बिठा के साधक प्रसन्न रहना आरंभ दे कि

मेरो चिन्त्यो होत नहीं, हरि को चिन्त्यो होय।
हरि को चिन्त्यो हरि करें, मैं रहूँ निश्चिन्त॥

इन तमाम संकल्पों, नियमों के अलावा आप यह निश्चित कर लें कि मुझे दिनभर में इतना समय सत्संग का श्रवण करना ही है। आज आधुनिक युग में तो सत्संग की ढेरों कैसेटें, पुस्तकें हैं। कोई परिश्रम की जरूरत ही नहीं। नियमित सत्संग-श्रवण से बहुत-बहुत फायदा होता है। अगर आप नियमित रूप से सत्संग सुनेंगे तो आपका मन फालतू विचारों में नहीं बहेगा, मनोराज से बचेगा और सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि आप जो सत्संग सुनेंगे उसीके विचारों में आपका मन लगा रहेगा। मन सहज रूप से उन्हीं विचारों को विचारता रहेगा। सत्संग के वचनों के बार-बार मनन से आपमें विवेक-वैराग्य स्वतः ही जागृत होगा। सत्संग के विचारों के मनन से स्वतः ही आपका मन हल्की कामनाओं और तुच्छ आकर्षणों से बचकर सत्संग-सुधा के पान में संलग्न रहेगा और यही हो गयी आपकी सहज बंदगी। पूजा-आराधना, सत्संग के विचारों का बार-बार मनन न केवल आपके गिरते हुए मन-बुद्धि को सँभाल लेगा, वरन् उन्हें बुद्धिदाता में प्रतिष्ठित होने का मौका भी प्रदान करेगा। ज्यों-ज्यों आप सत्संग सुनते जाएँगे त्यों-त्यों अपने जीवपने के स्वभाव से ऊपर उठकर शिवपने की ओर बढ़ते जाएँगे। ठीक ही कहा है कि सत्संग से वंचित होना महान् पापों का फल है। यदि कोई व्यक्ति साधक नहीं है और सत्संग बार-बार सुने-विचारे तो वह श्रेष्ठ साधक बन सकता है, श्रेष्ठ में श्रेष्ठ परमात्म-तत्त्व का साक्षात्कार कर सकता है। सत्संग, सेवा और

साधन-भजन का यह परम फल है कि ईश्वर का रस आने लग जाय... ध्यान का, गुरुकृपा का प्रसाद उभरने लग जाय।

शुकदेवजी महाराज परीक्षित को सत्संग सुनाने जा रहे थे तो देवता लोग प्रार्थना करने लगे कि सत्संग-सुधा हमें ही पिला दो । बदले में हम परीक्षित को स्वर्गामृत दे देंगे । लेकिन शुकदेवजी ने यह कहते हुए देवताओं को सत्संग-सुधा पिलाने से इन्कार कर दिया कि : 'स्वर्गामृत पीने से अप्सराएँ मिलती हैं और पुण्य नष्ट होते हैं जबकि सत्संग का अमृत पीने से पाप नष्ट होते हैं । सत्संग से अन्तःकरण में जो शान्ति, आनंद फलता है उसके आगे स्वर्ग का सुख अत्यन्त तुच्छ है ।' इसीलिए कहा गया है :

सत्संग की आधी घड़ी सुमिरन वर्ष पचास ।
वर्षा बरसे एक घड़ी, अरट फिरे बारह मास ॥

भगवान श्रीरामचन्द्रजी महादेवजी से वर्ष पर्यन्त अयोध्या में रहकर अयोध्यावासियों को सत्संग-अमृत का पान कराने का निवेदन करते हैं । अतः दुनिया में सत्संग एक अद्वितीय रत्न है, कोहिनूर है, पारसमणि है... बल्कि ये सब तो पत्थर हैं जबकि सत्संग तो मुक्ति की जीती-जागती प्रज्वलित ज्योत है। इसलिए साधक को प्रतिदिन नियमित रूप से सत्संग करना ही चाहिए।

साधकों को चाहिए कि 'यौवन-सुरक्षा', 'ईश्वर की ओर' पुस्तक को बार-बार पढ़ें-विचारें । इससे साधन-भजन में रुचि पैदा होती है । साथ ही साथ 'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' तो नित्य पढ़ें और उसमें डूबते जायें । श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण का नित्य पठन-मनन करे और यदि आत्म-साक्षात्कार न हो तो राम बादशाह अपना सिर कटाएगा ऐसी घोषणा स्वामी रामतीर्थ नें की थी।

इस प्रकार एक श्रेष्ठ साधक बनने के लिये उक्त सद्गुणों को गंभीरतापूर्वक जीवन में उतारें। यदि आप इतना करने के लिये तत्पर हो जाएँ तो परमात्मा प्रकट हुए बिना नहीं रह पाएगा। फिर देखिये, श्रेष्ठ साधक बनने का संकल्प ही आपको किस ऊँचाई तक ले जाता है और संसार में रहते हुए भी संसार से पार ले जा सकता है ! तो फिर देरी कैसी... ?

बड़े कृपालु हैं आत्मस्वरूप में जगानेवाले !

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

अनादि और अनंत काल से यह संसार चलता आ रहा है और चलता रहेगा । इस संसार में करोड़ों आदमी पैदा होते हैं और मर जाते हैं।

इन सबमें मुख्य रूप से चार प्रकार के लोग होते हैं :

एक होते हैं प्रवाही : जैसे, नदी का प्रवाह बह रहा हो और उसमें तिनका गिरे तो वह प्रवाह के साथ बह जाता है। ऐसे ही जो चित्त के विकारों के बहाव में बह जाता है, काम आए तो काम में बह जाय, क्रोध आए तो क्रोध में बह जाय और लोभ आए तो लोभ में बहकर लोभी बन जाय, ऐसे लोगों को प्रवाही बोलते हैं।

दूसरे होते हैं कर्मी : वे प्रवाह में बहते तो हैं पर थोड़ा विचार भी करते हैं कि आखिर क्या ? काम, क्रोध, लोभ, मोह में कब तक बहते रहना ? वे थोड़ा व्रत-नियम ले लेते हैं, कुछ सत्कर्म कर लेते हैं और अपनेको बहने से रोक लेते हैं। रुकने का मौका मिला तो रुक गये पर प्रवाह का धक्का लगा तो किनारा छूट जाता है । जैसे, कोई पेड़ के तने के सहारे रहकर अपनेको बचाते हुए किनारे लग जाता है वैसे ही वे आत्मभावरूपी तने के सहारे किनारे लगते हैं किन्तु जोरों का धक्का लगने पर पुनः बहने लगते हैं। इनमें जो साधकों और भक्तों का समावेश होता है उन्हें कर्मी कहते हैं।

बार जन्मना और मरना। इस बात की स्मृति बनाये रखना। आप जिस देश में रहो, जिस वेश में रहो, हमें उससे कोई हर्ज नहीं है लेकिन जहाँ भी रहो, अपने आत्मा-परमात्मा में रहना, अपने सत्यस्वरूप की स्मृति बनाये रखना।

जिस देश में, जिस वेश में, जिस हाल में रहो।
शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं कहो॥

परमात्मा के नाते आपका और हमारा संबंध है। वह परमात्मा ही सबका आधार है। परमात्मा को जान लेना ही सर्व का सार है।

धीरो न द्वेष्टि संसारमात्मानं न दिदृक्षति।
हर्षामर्षविनिर्मुक्तो न मृतो न च जीवति॥

'हर्ष-शोकरहित ज्ञानी संसार के प्रति न द्वेष करता है और न आत्मा को देखने की इच्छा करता है। वह न मरा हुआ है और न जीता है।'

(अष्टावक्र गीता)

जब तक यह स्थिति प्राप्त न हो तब तक आप भी सत्संग का श्रवण-मनन करते रहना और ज्ञानरूपी तने का आधार लेकर संसार-प्रवाह से बाहर निकलकर आत्मस्वरूप में आ जाना।

ॐ... सावधान ! ॐ... ॐ... ॐ...

जितना चलना चाहिए उतना चलना होगा, जितना चल सकते हो उतना नहीं। आशिक नींद में ग्रस्त नहीं होते। व्याकुल हृदय से तड़पते हुए प्रतीक्षा करते हैं। सदा जागृत रहते हैं। सदा ही सावधान रहा करते हैं...
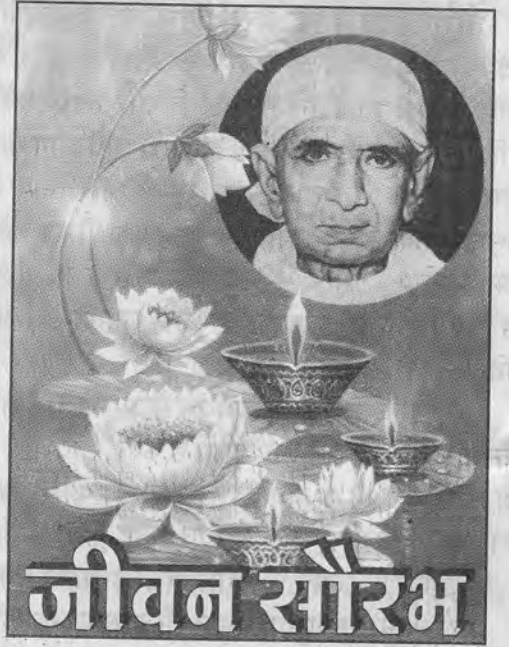
योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री

लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति

(गतांक का शेष)

उत्तर भारत में तपस्यामय जीवन बिताकर पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू कई वर्षों के बाद सिंध देश में नयी शक्ति, नयी ज्योति एवं अंतर की दिव्य प्रेरणा प्राप्त कर, लोगों को सच्चा मार्ग बताने, गरीब एवं दुःखी लोगों को ऊँचा उठाने तथा सत्‌शिष्यों एवं जिज्ञासुओं को ज्ञानामृत पिलाने के लिए आये।

'सुखमनी' के इस वेद-वचन में उन्हें पूर्ण श्रद्धा थी कि :

ब्रहम महि जनु जन महि पार ब्रहमु।
एकहि आपि नही कछु भरमु॥

'जिन्होंने परब्रह्म का अनुभव कर लिया है ऐसे संत ब्रह्म में और परब्रह्म ऐसे संत में समा जाते हैं। दोनों एकरूप हो जाते हैं। दोनों में कोई भेद नहीं रहता।'

वे स्वयं भी कहते कि, जहाँ द्वैत नहीं है वहाँ दूसरों

की भलाई करना यह स्वयं की ही भलाई करने जैसा है। वे वेद एवं उपनिषदों के वचनों के अनुसार पूरे विश्व को ही अपना मानते हैं।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्॥

'अठारह पुराणों में वेदव्यासजी के दो ही वचन हैं कि परोपकार ही पुण्य है एवं दूसरों को पीड़ा देना पाप।'

पूज्य संत श्री लीलाशाहजी बापू ने व्यासजी के इन वचनों को अपना लिया कि परोपकार ही परम धर्म है। इसके लिए उन्होंने अपना सारा जीवन दाँव पर लगा दिया। धार्मिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक हर क्षेत्र में कार्य शुरू किया। वे मानो स्वयं एक चलती-फिरती संस्था थे, जिनके द्वारा अनेक कार्य होते थे।

सर्व प्रथम तलहार में जाकर उन्होंने संत रतन भगत के आश्रम में एक कुआँ खुदवाया। वहाँ दूसरे साधकों के साथ वे स्वयं भी एक मजदूर की भाँति कार्य करते थे। धन्य ! संत की लीला कितनी अनुपम होती है !

वहीं उन्होंने एक गुफा बनवायी थी। लंबे समय तक वे उसी गुफा में रहते। प्रातःकाल गुफा में से निकलकर शुद्ध हवा लेने जंगल की ओर घूमने जाते। रोज श्रद्धालु, प्रेमी भक्तों को सत्संग देते। दिन में एक ही बार भोजन लेते। मौज आ जाती तो अलग-अलग गाँवों एवं शहरों में जाकर भी लोकसेवा करते एवं सुबह-शाम सत्संग देते। गर्मी के दिनों में आबू, हरिद्वार, हृषिकेश अथवा उत्तरकाशी में जाकर रहते।

जिन्होंने अपने सगे बेटे की तरह उनका लालन-पालन किया था उन चाची को उन्होंने वचन दिया था कि उनकी अंतिम क्रिया वे स्वयं आकर करेंगे। अतः कभी-कभार वे अपनी चाची के पास भी हो आते थे।

तलहार में एक बार अपनी चाची की गंभीर बीमारी के समाचार सुनकर वे घर पधारे किंतु घर जाते ही पता चला कि वे समाचार झूठे थे। उन्होंने चाची को समझाया :

''आपके पास जो सोना पड़ा है, वह साँप है। मरते समय उसमें मोह रह जायेगा तो जीव की अवगति होगी। अतः सभी आभूषणों को बेच डालो और जो पैसे आयें उसे दान कर दो।''

चाची ने सभी आभूषण पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू को दे दिये। पूज्य बापू ने उन्हें बेच दिया। थोड़े पैसे चाची के खर्च के लिए रखकर बाकी के सब पैसे गरीब-गुरबों में दान कर दिये। चाची माँ को खर्च के पैसे देकर जाने लगे और बोले :

''मैं अंत समय पर जरूर वापस आऊँगा।''

उसके एक वर्ष के बाद चाची की उम्र १०० वर्ष की होते ही वे खूब बीमार पड़ गयीं। केवल एक ही इच्छा थी कि अंत समय 'बेटे' के दर्शन हों। उस वक्त पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज हरिद्वार में थे। इस ओर चाची के शरीर में खिंचाव होने लगा... पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज भी ठीक समय पर आ पहुँचे।

दूसरे दिन चाचीमाँ ने प्राण त्याग दिये। पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू ने १२ दिन रहकर उनकी सभी अंतिम क्रियाओं को स्वयं करके अपना वचन निभाया।

पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू अब कौटुम्बिक जवाबदारियों से मुक्त हो गये। अब उनका पूरा समय जनसेवा के कार्यों में बीतने लगा। उन महान् ज्ञानी के जीवन में कर्मयोग के साथ देशभक्ति भी झलक उठती थी। उनका रहन-सहन एकदम सादा था। किसी भी जगह पर जाते तो शहर के बाहर एकांत स्थल ही रहने के लिए पसंद करते। प्यारा-प्यारा 'भाई' शब्द तो उनके द्वारा सदैव बोला जाता। उनका दिल भी अत्यंत कोमल एवं धीरजवाला था। वाणी पर उनका खूब संयम था। वे सँभल-सँभलकर धीरे-धीरे बोलते थे। वे सादगी, सदाचार, संयम एवं सत्य के सच्चे प्रेमी थे।

सिंध के दक्षिणी भाग लाड़ में उन्होंने देखा कि वहाँ के लोग व्यावहारिक तौर पर काफी पीछे हैं। वहाँ उन्होंने छोटे-बड़े सभी को स्वास्थ्य सुधारने के लिए योगासन एवं व्यायाम करने के लिए प्रोत्साहित किया। इसके अलावा सत्संग देकर लोगों को परमात्म-मार्ग पर चलने के लिए भी प्रोत्साहित किया।

सुबह कई नौजवान उनके पास आते तब वे उन्हें योगासन सिखाकर उसके फायदे बताते, साथ-ही-साथ ब्रह्मचर्यपालन एवं वीर्यरक्षा की महिमा भी खूब अच्छे ढंग से बताते। योगासन एवं कसरत कराने के

बाद नवयुवकों को दूध पिलाकर जंगल की ओर खुली हवा में घूमने के लिए ले जाते।

उन्होंने विद्यार्थियों, नवयुवकों एवं बड़ों में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार पर खूब जोर दिया। बहनों एवं माताओं को भी हिन्दी सीखने के लिए उत्साहित किया। उनकी प्रेरणा से सिंध में टंडोमहमदखान, संजोरी, मातली, तलहार, बदीन, शाहपुर वगैरह गाँवों में कन्या विद्यालय खुल गये, जिनमें मुख्य भाषा हिन्दी थी।

पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू जहाँ-जहाँ जाते वहाँ-वहाँ खादी एवं स्वदेशी चीजों के उपयोग करने का आग्रह करते। **महात्मा गाँधी ने तो अभी खादी पहनने का आंदोलन शुरू भी नहीं किया था, उसके पहले ही उन्होंने स्वयं बुनकर के हाथ से बनाये गये खादी के कपड़ों को पहनना शुरू कर दिया था।** लोगों को फैशन से दूर रहने एवं सादा जीवन जीने की सलाह दी। लाड़ में शराब एवं कबाब खाने का जो रिवाज पड़ गया था, उसे बंद करने के लिए उन्होंने खूब मेहनत की। इसके अलावा बालविवाह की प्रथा भी बंद करायी।

लाड़ में हरिजनों की स्थिति खूब दयाजनक थी। उनकी स्थिति सुधारने एवं विकसित करने के लिए स्वामी हंस निर्वाण संस्था प्रयास कर रही थी। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने उस कार्य को साकार कर दिखाया था। वे खुद हरिजन लोगों की बस्ती में जाकर उन्हें स्वास्थ्य का महत्त्व बताते। सफाई से रहना सिखाते, बच्चों को स्कूल में पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते। लोगों को समझाते कि 'तुम हिंदू हो। अंडे, मांस एवं शराब का उपयोग बन्द कर दो।'

उन्होंने हरिजन बच्चों को पढ़ाने के लिए एक बहन को भी रखा था जो उन लोगों की बस्ती में जाकर बच्चों को पढ़ाती थी। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज खुद ही बच्चों को किताबें, कापियाँ वगैरह देते। अपनी कुटिया के कुएँ में से हरिजनों को पानी भरने देते। दूसरों को भी सलाह देते कि ऊँच-नीच के भेद को छोड़कर हरिजनों को किसी भी कुएँ से पानी भरने दो।

हरिजनों के घर में भी सूत काँतना सिखाकर उन्हें स्वावलंबी बनने के लिए प्रेरित करते। उनके मार्गदर्शन से हरिजन पवित्रता एवं स्वच्छता से रहने लगे। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज छूत-अछूत के भेद को दूर करने के लिए कभी-कभी पवित्रता से बनाये गये हरिजनों के भोजन को भी ग्रहण करते।

पूरे सिंध देश में जहाँ-जहाँ भक्तजन पुकारते वहाँ-वहाँ प्रेम के प्रत्युत्तर के रूप में स्वयं जाकर सत्संग द्वारा जनता में संगठन एवं देशप्रेम की भावना जागृत करते। स्त्रियों, हरिजनों एवं समाज के उत्थान के लिए, बालविवाह प्रथा को बंद करने के लिए लोगों को प्रोत्साहित करते। यौगिक क्रियाओं एवं कसरतों द्वारा तन को तंदुरुस्त एवं मन को प्रसन्न रखकर सुखी जीवन जीने की कुंजी बताते।

देश में जब भी कोई दैवी प्रकोप जैसे कि अकाल, भूकंप, संक्रामक रोग, अतिवृष्टि या अनावृष्टि होती तब अनाथ, पीड़ित लोगों को मदद करने के लिए उनका हृदय एकदम तत्पर हो जाता। एक बार बिहार में अकाल पड़ा तब पूज्यश्री ने श्रद्धालु भक्तों के पास से पैसे इकट्ठे करके अनाज एवं जीवनोपयोगी वस्तुओं को हैदराबाद से भेजने की व्यवस्था की। उस वक्त मुसलमानों के रोजे के दिन चल रहे थे। मुसलमानों ने कहा : ''आज २९वाँ रोजा है। रात्रि को चंद्रदर्शन करके, रोजा (उपवास) छोड़कर, कल ईद मनाकर फिर नावें ले जायेंगे।''

उस वक्त पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने १७-१८ दिनों से शपथ ले रखी थी कि 'जब तक अकाल-पीड़ितों के लिए नौकाएँ रवाना नहीं हो जायेंगी तब तक मैं उपवास नहीं तोड़ूँगा।' इधर नाविक लोग नावों को न ले जाने के लिए हठ ले बैठे थे। तब पूज्यश्री श्रीमुख से निकल पड़ा : ''आज तुम्हें चंद्र नहीं दिखेगा एवं कल तुम ईद भी नहीं मनाओगे।''

हुआ भी ऐसा ही। चंद्र दिखा ही नहीं... अंत में परेशान होकर नाविक लोग नावें लेकर हैदराबाद पहुँचे। सामान पहुँचने का पक्का भरोसा कर लेने के बाद ही पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने अपना उपवास छोड़ा।

इसी प्रकार जब बंगाल में सन् १९४९ में भीषण अकाल पड़ा तब फिर से पूज्य श्री लीलाशाहजी

महाराज ने दस हजार मन अनाज एकत्रित करवाया। टंडोमहमदखान, तलहार एवं बदीन में स्वयं खड़े रहकर सारा अनाज नौकाओं पर चढ़वाया। जब तक कराची से बंगाल जाने के लिए अनाज रवाना नहीं हुआ तब तक उपवास जारी रखा।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज जब हरिद्वार में रहते थे तब बारिश के दिनों में अत्यधिक बरसात होने की वजह से गंगा के जोरदार बहाव को पार करके आने-जाने में गाँव के लोगों को काफी परेशानी उठानी पड़ती। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के करुणामय हृदय से यह कष्ट नहीं देखा गया।

वे पुनः सिंध गये एवं सिंध से आवश्यक धनराशि एवं एक रिटायर्ड इन्जीनियर को साथ लेकर हरिद्वार आये एवं हरिद्वार तथा उत्तरकाशी में तीन पुल बनवाये। तब वहाँके लोगों ने खुश होकर पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज का बहुत आभार माना।

यह काम वास्तव में तो गढ़वाल के राजा के द्वारा किया जाना था किन्तु राजा ने उस तरफ ध्यान तक न दिया। जब उसे पता चला कि यह काम किसी महात्मा द्वारा हो रहा है तब पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के दर्शन के लिए आकर प्रार्थना करने लगा कि :

''अब आपके खान-पान की पूरी व्यवस्था राजदरबार की ओर से की जाएगी।'' किन्तु पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने स्पष्ट रूप से मना कर दिया। तब राजा ने कहा : ''आप सचमुच में गुरु नानक की तरह शाहों के शाह हैं।'' (क्रमशः)

आकल्पजन्मकोटीनां
यज्ञव्रततपः क्रियाः।
ताः सर्वाः सफला देवि
गुरुसंतोषमात्रतः॥

'हे देवी ! कल्पपर्यन्त के, करोड़ों जन्मों के यज्ञ, व्रत, तप और शास्त्रोक्त क्रियाएँ- ये सब गुरुदेव के संतोषमात्र से सफल हो जाते हैं।' *-भगवान शंकर*

सद्गुरु क्या से क्या बना देते हैं !

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

श्रीरामचरितमानस में आता है :

बिनु सत्संग न हरिकथा तेहु बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु रामपद होई न दृढ़ अनुराग॥

सत्संग मानव जीवन में काम, क्रोध, लोभ, मोह की जगह पर राम से प्रीति, क्षमा, उदारता एवं विवेक-वैराग्य ला देता है। अशांति के प्रसंगों पर भी चित्त की शांति दिला देता है। कायरता की जगह पर निर्भयता ला देता है। क्रूरता की जगह पर प्रेम प्रगटा देता है। इतना ही नहीं, वरन् पतित जीवन से उठाकर प्रभुमय बना देता है।

यहाँ एक ऐसे ही क्रूर एवं घातक स्वभाववाले भील का प्रसंग दिया जा रहा है जिसके जीवन में सत्संग एवं हरिनाम ने समूचा परिवर्तन ला दिया था :

साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व की बात है। अरावली की तलहटी में जंगली कही जा सके ऐसी भील, किरात एवं शिकारी जातियाँ निवास करती थीं। उनका मुख्य कार्य था शिकार करना। तीर-भाले आदि के द्वारा मोर, तीतर, हिरण, कबूतर आदि का शिकार करके वे अपना पेट पालते थे।

उन्हीं में एक खैमाल नामक भील था। वह सुबह धनुष-बाण लेकर जंगल में जाता एवं शिकार करके झोली में भरकर दोपहर तक वापस घर आ जाता। यही उसकी दिनचर्या थी।

एक दिन शिकार करके घर लौटते वक्त उसके

कानों में हरिकीर्तन का शब्द पड़ा। आवाज की मधुरता एवं गहराई ने उसे अपनी ओर आकर्षित किया। वह कुतूहलवश वहाँ पहुँचा जहाँ कीर्तन हो रहा था। एक खंडहर बन चुके जीर्ण शिवालय के चबूतरे पर बैठकर दो साधु हरिनाम की मस्ती में झूम रहे थे। अंतर को छूकर आती हरिनाम की धुन ने खैमाल को भी झूमने के लिए विवश कर दिया। वह भी पास में बैठकर तालियाँ बजाकर झूमने लगा। उसकी झोली में भरे हुए शिकार का लहू बहकर उन साधुओं के पास पहुँचा तो लहू की गर्मी एवं गीलेपन से साधु चौंक उठे! आँखें खोलकर देखा तो पास में एक भील धनुष-बाण लेकर

भजनानंद में मस्त होकर बैठा है। उसके पास में एक झोली पड़ी है। उसी झोली में से रक्त की धार बहकर उन्हें भीगो रही है।

कीर्तन बंद होने पर खैमाल ने आँखें खोलीं। सामने बैठे हुए साधुओं को अचानक प्रणाम भी हो गया। तब एक साधु ने खैमाल से पूछा :

''भाई! इस झोली में क्या है ?''

''इसमें तो मेरा शिकार है। मैं इसे घर ले जाऊँगा एवं मेरी घरवाली इसको पकाकर कुटुम्बियों को खिलायेगी।''

''तू इन निर्दोष प्राणियों की हत्या करके अपना पेट भरता है ?''

''जी बाबाजी! यह तो हमारा रोज का काम है। शिकार न करें तो बच्चों को क्या खिलाएँ ?''

भील की सरलता साधुओं को अच्छी लगी। साधु तो स्वाभाविक ही परोपकारी होते हैं। सरल एवं निष्कपट हृदय से निवेदन करनेवालों पर वे शीघ्र ही बरस पड़ते हैं। इस भील को देखकर उन्हें दया आ गयी। वे बोले :

''भाई! इस प्रकार प्राणियों की हत्या करके खाना यह पाप है।''

भील : ''बाबाजी! पाप क्या होता है ?''

तब साधु ने बगल में पड़े तरकस में से एक तीर निकालकर खैमाल की जाँघ में घुसा दिया। खैमाल चिल्ला उठा। रक्त की धार बह चली।

''क्या हुआ ?''

''अरे! आपने यह क्या किया, बाबाजी!''

''तुझे दर्द होता है ?''

''जी बाबाजी! बहुत ज्यादा।''

''ऐसा ही दर्द प्राणियों को तेरे तीर लगने पर होता है। बेचारे मूक प्राणी तो अपनी व्यथा कह भी नहीं सकते।''

साधु ने एक जड़ी-बूटी निकालकर घाव पर

लगा दी । रक्त निकलना बंद हो गया एवं दर्द भी गायब हो गया ।

''अब कैसा लगता है ?''

''बहुत अच्छा लगता है ।''

''अब प्राणियों को अच्छा लगे, ऐसे कार्य तू करे तो ?''

साधु की बात खैमाल के गले उतर गयी । कैसी अजब रीति है संतों की समझाने की ! जिसे पाप क्या है यही पता नहीं, उसे किस अनोखे ढंग से समझा दिया !

खैमाल ने पूछा : ''परन्तु बाबाजी ! मेरे कुटुम्ब का भरण-पोषण कौन करेगा ?''

तब साधु ने कहा : ''तू जिन पशु-पक्षियों को मारकर लाता है उनका भरण-पोषण कौन करता है ?''

खैमाल कुछ समझ न पाया । तब उसे समझ में आये ऐसी भाषा में सत्संग देते हुए साधु ने कहा :

''सब प्राणियों का भरण-पोषण भगवान के द्वारा होता है । भगवान सभी का ख्याल रखते हैं । भगवान सभी के हृदय में निवास करते हैं । अतः किसी भी जीव की हत्या करना पाप है और पशुओं का आहार करना वर्जित है ।

मांस-मांस सब एक है पक्षी हिरनी गाय।
आँख देखी जे खात हैं कबीर ते नर नरक हिं जाय ॥

जिस प्रकार तीर की नोक से तुझे पीड़ा हुई वैसी ही पीड़ा दूसरे जीवों को भी होती है । संत दादू कहते थे :

काहे को दुःख दीजिए साँई है सब माहिं।
दादू एकै आत्मा दूजा कोई नाहीं॥

देख भाई ! भूख से कोई नहीं मरता । प्रारब्ध पूरा होने पर ही मौत आती है । अतः जीवहत्या का धंधा छोड़ और रामनाम का धंधा कर ।''

सामनेवाले के हित को ध्यान में रखकर की गयी बात से सामनेवाले के स्वभाव में परिवर्तन लाना संभव है । खैमाल को साधुओं के सत्संग की बात इतनी अच्छी लगी कि वह घर जाना ही भूल गया । उसे खूब शांति का अनुभव होने लगा एवं हरिनाम मधुर लगने लगा । उसने साधुओं से अनेक प्रश्न पूछकर समाधान पाया । लगातार तीन दिन के सत्संग से उसका मन निर्मल हो गया । शास्त्र में आता है :

अमंत्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम् ।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः ॥

'संसार में ऐसा कोई अक्षर नहीं जो मंत्र न हो, ऐसी कोई वनस्पति नहीं जो औषधि न हो और ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो परमात्म-प्राप्ति के लिए योग्य न हो किन्तु यह बतानेवाले (महापुरुष) ही दुर्लभ हैं ।'

महापुरुषों का सान्निध्य एवं उनके बताये गये मार्ग का अनुसरण मानव को श्रेष्ठ मानव तो क्या महेश्वर भी बना सकता है, जीव को शिवत्व में जगा सकता है ।

तीन दिन बीत गये । तब साधुओं ने खैमाल से कहा : ''खैमाल ! हम तो रहे साधु और साधु तो चलता भला ।''

खैमाल की आँखें भर आयीं । कंठ अवरुद्ध हो गया । वह रोते-रोते बोला :

''बाबाजी ! फिर मेरा क्या होगा ?''

तब साधुओं ने कृपादृष्टि करते हुए कहा :

''तू यहीं रुक जा । जो साधु-संत आयें उनकी आवभगत करना । बाकी का समय श्रीकृष्ण के ध्यान-भजन में बिताना । योग्य समय पर तुझे मुरलीधर श्रीकृष्ण के दर्शन होंगे । जब दर्शन हों तब उनसे जन्म-मरण से मुक्ति ही माँगना ।''

''किन्तु बाबाजी ! मैं तो अत्यंत अधम हूँ । पूरी जिंदगी निर्दोष प्राणियों की हत्या करने में बितायी है । भला, मुझे कैसे मुरलीधर के दर्शन हो सकते हैं ?''

''देख भाई ! भगवान ने स्वयं ही कहा है कि पापी से पापी एवं दुराचारी से दुराचारी भी यदि एक चित्त से सच्चे हृदय से भगवान को भजता है तो उसे भगवान अवश्य मिलते हैं ।''

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥

'यदि तू अन्य सब पापियों से भी अधिक पाप करनेवाला है तो भी तू ज्ञानरूप नौका द्वारा निःसंदेह संपूर्ण पाप-समुद्र से भलीभाँति तर जाएगा ।'

अपिचेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। (उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।)'

(गीता : ४.३६ एवं ९.३०)

भावविभोर खैमाल बोल उठा :

''बाबाजी ! आप ही मेरे सच्चे गुरु हैं। आपने मुझे अधम कार्य से छुड़ाकर रामनाम से जोड़ दिया। यदि आपका सत्संग न मिला होता तो मैंने और भी न जाने कितने ही निर्दोष प्राणियों की हत्या कर दी होती।''

इतना कहकर खैमाल साधुओं के चरणों में गिर पड़ा एवं अश्रुधार से उनके चरणों को भीगो दिया। साधु उसे आशीर्वाद देकर चल पड़े।

शिकारी में से साधक बना हुआ खैमाल गुरु के शब्दों में विश्वास एवं श्रद्धा रखकर श्रीकृष्ण के ध्यान-भजन में तल्लीन रहने लगा।

'श्रीरामचरितमानस' में आता है कि जब हनुमानजी ने लंका में प्रवेश के समय लंकिनी नामक राक्षसी को अपनी मुष्टि के प्रहार से लहूलुहान कर दिया था तब लंकिनी ने कहा था :

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला इक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

सत्संग के प्रभाव से खैमाल की क्रूरता एवं हिंसा नम्रता एवं दया में परिवर्तित हो गयी और अब तो वह मुरलीधर के दर्शन के लिए खूब छटपटाने लगा। 'मैं कृष्ण का हूँ... कृष्ण मेरे हैं...' ऐसा भाव दृढ़ होने लगा। एक... दो... तीन वर्ष नहीं, पूरे ग्यारह वर्ष तक वह उसी खंडहर में गुरु के शब्दों पर पूरी श्रद्धा एवं विश्वास से लगा रहा।

उसकी प्रतीक्षा का समय पूर्ण हुआ। उसकी प्रेमाभक्ति से प्रसन्न होकर एक दिन शिवजी वहाँ प्रगट हो गये। मंदिर में अत्यंत प्रकाश छा गया। वातावरण सुगंधित हो उठा। खैमाल ने आँखें खोलकर देखा तो सामने साक्षात् शिव खड़े हैं ! खैमाल सिर धुनने लगा :

''मुझे तो मेरे मुरलीधर के दर्शन करने हैं। नागवाले शिव के नहीं।''

''मुझमें और कृष्ण में कोई भेद नहीं है।''

''तो फिर मुझे श्रीकृष्ण के दर्शन क्यों नहीं होते ?''

... और दूसरे ही क्षण होठों पर बंसी रखे हुए, सिर पर मोरपींछ का मुकुट धारण किये हुए, पीला पीतांबर पहने हुए मधुर मुस्कान के साथ श्रीकृष्ण प्रगट हो गये। श्रीकृष्ण की बँसी की मधुर सुर सुनकर खैमाल अपनी सुध-बुध खो बैठा। व्याकुल होकर उसने श्रीकृष्ण के पावन चरणों में अपना मस्तक रख दिया। अश्रुओं की धार से उनका पाद-प्रक्षालन कर दिया।

''प्रभु ! इतने सारे वर्ष ? खैर, उसमें आपका क्या दोष ? मैंने ही कई अधम कार्य किये थे। आप तो सचमुच पतितपावन हो। मेरे जैसे दुष्ट एवं पापी को भी आपने दर्शन देकर पावन कर दिया। मेरे गुरु का आदेश है कि मैं आपसे मुक्ति का वरदान माँगूँ किन्तु मेरी तो कोई इच्छा ही नहीं रही। दर्शनमात्र से मैं धन्य-धन्य हो गया। आप मुझे अपने में डुबा दें... मेरा सब मिटा दें... नाथ ! बस, अब तो तेरी मर्जी पूरण हो...''

खैमाल की आँखों से अश्रुधारा बरस रही है... हृदय प्रेम से भावविभोर हो रहा है ... खैमाल प्रेमानंद में डूबता ही चला जा रहा है...

इतने में तो श्रीकृष्ण अंतर्धान हो गये किन्तु अब उनका भक्त प्रेमाभक्ति के सिंहासन पर आरूढ़ हो चुका था। अब उनसे वियोग कैसा ?

ठीक आठ वर्ष के बाद खैमाल के गुरु वहाँ पधारे। गुरु शिष्य की स्थिति को देखकर सब समझ गये। जैसे ही गुरुदेव के श्रीचरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करने के लिए वह झुका वैसे ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

गुरुजी ने उसी जीर्ण शिवालय के खंडहर में उसकी समाधि बनायी। गुरु के शब्दों में अटूट श्रद्धा रखकर, आदेश का पूर्ण पालन करते हुए देह छोड़नेवाले खैमाल की समाधि आज भी उसकी साक्षी दे रही है।

गुरु गुरु होते हैं...

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

गुरुओं की कृपा एवं आत्मीयता तभी हमारे अंतःकरण को रंगेगी जब हम उनके साथ श्रद्धा-भक्ति से जुड़ जायेंगे, तदाकार हो जायेंगे। नहीं तो एक-एक विकार को मिटाने के लिए हमें बहुत मजदूरी करनी पड़ेगी।

गुरु से यदि सच्ची प्रीति जुड़ गयी तो फिर दोष न जाने किस कोने में जाकर क्षीण हो जायेंगे अथवा पलायन कर जायेंगे इसका भी पता नहीं चलेगा। 'मुझमें दोष हैं' यह याद करके उन्हें निकालना तो ठीक है लेकिन ऐसे निर्दोष गुरुओं का एवं आत्मा का चिंतन इतना गहरा हो कि दोष की याद ही न आये यह उससे भी अनंतगुना अधिक लाभकारक है।

भगवान की मूर्ति में और तीर्थ में तो श्रद्धा हो जाती है लेकिन सद्गुरु में श्रद्धा होना कठिन है। सद्गुरु में श्रद्धा होना अर्थात् उनमें कभी कोई भी दोष न देखना। लेकिन... उनमें कभी-न-कभी, कोई-न-कोई दोष, कुछ-न-कुछ कमी दिख ही जायेगी और जैसा दोष अपने चित्त में होगा वैसा दिखेगा जरूर। रामकृष्ण परमहंस के प्रति विवेकानंद की दोष दृष्टि सात बार हुई थी। कभी विवेकानंद को रामकृष्ण परमहंस ने कृपा करके सँभाल लिया तो कभी विवेकानंद ने सच्चे हृदय से प्रायश्चित्त करते हुए माफी माँगते हुए निवेदन कर दिया कि : 'मुझे आपके लिए ऐसा-ऐसा भाव आता है।'

गुरु के बाह्य व्यवहार को न देखकर गुरु के संकेत को समझना चाहिए। अभी आपके पास गुरुतत्त्व का चश्मा ही नहीं है। अपनी जीवत्व की निगाहों से आप गुरु को कितना और कैसे देखोगे ? अगर गुरु को अपनी तुच्छ मति से मापने-तौलने की कोशिश की तो आपकी खोपड़ीरूपी तराजू टुकड़े-टुकड़े हो जायेगी। गुरु आपकी बुद्धि द्वारा तौलने का विषय नहीं हैं, वरन् गुरु तो गुरु हैं।

गोरखनाथ के चित्त में भी एक बार कुछ ऐसा ही भाव आ गया था। एक बार उनके गुरु मछन्दरनाथ चल दिये स्त्रियों के देश में। वहाँ की रानी के साथ उनकी शादी भी हो गयी और दो बच्चे भी हो गये। तब लोग गोरखनाथ से कहने लगे : ''बड़ा आया गुरु का भक्त ! बड़ा आया मछन्दरनाथ की जय बुलवानेवाला ! तेरे गुरु तो भ्रष्ट हो गये...''

गोरखनाथ से नहीं सहा गया। गोरखनाथ सोचने लगे कि : 'जहाँ मेरे गुरुदेव पहुँचे हैं उस स्त्रियों के देश में मैं कैसे जाऊँ ? क्योंकि वहाँ तो यति, योगी, त्यागी, साधुओं को प्रवेश की आज्ञा ही नहीं है। राज्य का सारा कार्यभार स्त्रियाँ ही सँभालती हैं। ऐसे देश में जाकर गुरुदेव से संपर्क कैसे करूँ ?'

उस त्रिया राज्य की रानी ने हनुमानजी को प्रसन्न करके मछन्दरनाथ को पाया था।

गोरखनाथ ने उस राज्य में जाकर गुरुदेव से संपर्क करने का उपाय खोज लिया। उन्होंने वहाँ की नृत्य-गान करनेवाली नर्तकियों से संपर्क किया और कहा : ''मुझे अपने राजदरबार में ले चलो।''

तब नर्तकियों ने कहा : ''हम तुम्हें नहीं ले जा सकते क्योंकि तुम पुरुष हो।''

''मुझे स्त्रियों के कपड़े पहनाकर ले चलो। मैं ढोलक तो बजाऊँगा लेकिन पैसा एक भी नहीं लूँगा।''

नर्तकियों में जो मुख्य नर्तकी थी उसने सोचा कि : 'ऐसा बिना पैसेवाला और इतना सुन्दर ढोलक बजानेवाला कहाँ मिलेगा ? चलो, इसे ले चलते हैं।'

गोरखनाथ को लेकर वे चल पड़ीं राजदरबार की ओर। राजदरबार में जाकर गोरखनाथ ने सारा मामला समझ लिया और नृत्य-गान के समय ढोलक में से

आवाज निकाली :

चेत मछन्दर गोरख आया...

चेत मछन्दर गोरख आया...

अब शिष्य के सामने मछन्दरनाथ नृत्य-गान कैसे देख सकते थे ? अतः उन्होंने सब नाच-गान करनेवालों को रवाना कर दिया । सबके जाते ही गोरखनाथ ने अपना असली स्वरूप प्रगट कर दिया :

''अलख ! आदेश ।''

गुरुदेव को प्रणाम किया और कहा : ''गुरुदेव ! आप इस चक्कर में कैसे ?''

गुरुदेव ने कहा : ''चलो, वापस चलते हैं किन्तु इन बच्चों को भी ले चलना होगा ।''

गोरखनाथ : ''जो आज्ञा ।''

गोरखनाथ की श्रद्धा थी गुरुचरणों में। अतः बच्चों को तो वे ले चले किन्तु मन में सोचा कि : 'यह कचरा ? विरक्त योगी का कैसे ?'

मार्ग में बच्चों को हाजत हुई तब मछन्दरनाथ ने कहा : ''जाओ गोरख ! इन्हें ले जाओ और धो-धाकर ठीक कर दो ।''

गोरखनाथ उन्हें ले गये तालाब के पास और तालाब में डुबा-डुबाकर, जैसे कपड़े को धोते हैं वैसे ही उन्हें भी धो डाला । शिला पर पटकने से दोनों के प्राणपखेरू उड़ गये । फिर गोरखनाथ उन्हें काँटों की बाड़ पर सुखाकर आ गये ।

मछन्दरनाथ : ''कहाँ गये दोनों ?''

गोरखनाथ : ''गुरुजी ! आपने ही तो कहा था कि दोनों को धो-धाकर ठीक करके आओ तो मैं उन्हें धोकर, ठीक करके, सुखाकर आया हूँ ।''

मछन्दरनाथ : ''अच्छा अच्छा, कोई बात नहीं। चलो आगे ।''

आगे चलकर मछन्दरनाथ को हाजत हुई अतः उन्होंने गोरखनाथ को झोला देते हुए कहा : ''गोरख ! जरा ध्यान रखना । इसमें फिकर है ।''

मछन्दरनाथ तो लोटा लेकर चलते बने । गोरखनाथ को हुआ कि : 'इसमें कौन-सी फिकर होगी ?' देखा तो सोने की ईंट ! गोरखनाथ ने ईंट उठाकर कुएँ में फेंक दी ।

मछन्दरनाथ आये और पूछा : ''बेटा ! इसमें जो फिकर थी, वह कहाँ गयी ?''

गोरखनाथ : ''गुरुजी ! आपने ही तो साधनाकाल में बताया था कि फिकर फेंक कुएँ में तो मैंने गुरु की फिकर कुएँ में फेंक दी ।''

यहाँ तक तो गोरखनाथ सत्‌शिष्य से दिख रहे हैं लेकिन अब... चलते-चलते कोई गाँव आया तब

मछन्दरनाथ ने कहा : ''गोरख ! तू जा जरा आगे। मैं बाद में आता हूँ।''

गोरखनाथ आगे निकल पड़े। गाँव में जाकर देखते हैं कि खूब तैयारियाँ हो रही हैं। कहीं तोरण बाँधे जा रहे हैं तो कहीं रंगोली पूरी जा रही है। कहीं मंडप बाँधे जा रहे हैं तो कहीं ब्राह्मण उत्सव की तैयारी में लगे हैं। पूरे गाँव को उत्सव की तैयारी में लगा हुआ देखकर गोरखनाथ ने पूछा :

''क्या बात है ?''

तब किसीने कहा : ''अरे ! तुम्हें पता नहीं ? गोरखिया के गुरु मछन्दरनाथ १२ साल से यहाँ गुफा में समाधि में बैठे हैं। समाधि से उठकर वे बाहर आ रहे हैं।''

''क्या ? मछन्दरनाथ तो एक ही हैं और गोरखनाथ भी तो दूसरा नहीं है।''

''हाँ हाँ, गोरखनाथ एक ही है। वही गोरख, वही सिद्ध, जिसे अपनी सिद्धाई का बड़ा गर्व है। उसीके गुरु यहाँ १२ साल से रहते हैं।''

''तुमने कभी देखा भी है गुरुदेव को ?''

''हाँ हाँ, क्यों नहीं ? हर अमावस, पूनम को हम वैदिक मंत्रों का उच्चारण करते हैं और गुरुदेव मछन्दरनाथ हमें दर्शन देते हैं।''

गोरखनाथ को हुआ कि 'ये कौन-से मछन्दरनाथ हैं ? देखना पड़ेगा।' गोरखनाथ ने तो बराबर जासूसी की। गुफा वगैरह सब देखा और चक्कर मारा तो देखा कि गुफा में कहीं से भी घुसने की जगह नहीं थी। फिर वे भी किसी जगह से सारा नजारा देखने लगे।

समय हुआ। शहनाइयाँ, बिगुल, बाजे और तुरही आदि बजने लगे। धूप-दीप से वातावरण सुगंधित होने लगा। ब्राह्मणों ने वैदिक मंत्रों का उच्चारण करते-करते गुफा का ताला खोला। गुरुदेव मछन्दरनाथ बाहर पधारे।

आश्चर्य ! गुरुदेव कल तक तो मेरे साथ थे और आज यहाँ !! यह कैसे संभव हुआ !!!

मछन्दरनाथ बोले : ''क्या देखता है गोरख ? गुरु गुरु होते हैं।''

यह एक जीव में से अनेक जीववाद का सिद्धांत है कि एक ऐसी अवस्था भी आती है कि एक शरीर से योगी तप कर रहा हो, दूसरे शरीर से भोग भोग रहा हो और तीसरे शरीर से भजन कर-करवा रहा हो... ऐसा भी कई योगियों के जीवन में संभव होता है जैसे, श्रीकृष्ण।

अन्तःकरण में यह सारा सामर्थ्य उस आत्मदेव से ही आता है। जैसे आपके अन्तःकरण में सपने की दुनिया बन जाती है वैसे ही आपके अंतःकरण में इतना प्रगाढ़ सामर्थ्य भी आ सकता है कि आप एक में से अनेक रूप भी बना सकते हैं। फिर भी तत्त्वज्ञान के आगे यह बहुत छोटी बात है।

तत्त्वज्ञान पाने के लिए ऐसे गुरु चाहिए कि जो आत्मा-परमात्मा के साक्षात्कार के आगे किसी ऋद्धि-सिद्धि को, किसी चमत्कार को ज्यादा महत्त्व न दें। ऐसे गुरुओं से अगर मुलाकात हो जाये तो बेड़ा पार हो जाय।

मरे हुए को जिन्दा करने की विद्या भी होती है और जिनको आत्मज्ञान हो गया है उनके चित्त में सहज में संकल्प होने पर भी मृतक व्यक्ति जीवित हो सकता है। मृतक को जीवित करनेवाली संजीवनी विद्या जाननेवालों की अपनी स्थिति होती है लेकिन जब किन्हीं ब्रह्मवेत्ता के चित्त में सहज में स्फुरणा हो जाती है तब ब्रह्मवेत्ता नहीं करता है वरन् ब्रह्म स्वभाव में स्पंदन हो जाता है और मृतक जीवित हो जाता है।

संजीवनी विद्या से जीवनदान अलग बात है और ब्रह्मवेत्ता महापुरुष के संकल्प से जीवनदान अलग बात है। कभी-कभी सिद्धियाँ आत्मवेत्ता महापुरुष में भी दिखती हैं तो कभी-कभी अज्ञानी जीवों में भी सिद्धियाँ होती हैं। अपने-अपने विषय की साधना करके अज्ञानी जीव भी कुछ-कुछ सिद्धियाँ पा लेते हैं। अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त किया हुआ व्यक्ति भी ब्रह्मज्ञानी हो यह जरूरी नहीं है।

रामकृष्ण परमहंस के पास तोतापुरी गुरु के मिलने से पूर्व ही सिद्धाई थी। माँ काली को पुकारने पर माँ का प्रगट होना यह सिद्धाई नहीं तो क्या है ? फिर भी तोतापुरी सद्गुरु की जब कृपा प्राप्त हुई तभी उन्हें आत्मज्ञान हुआ।

ऐसी आत्मज्ञानरूपी परम कृपा बरसानेवाले सद्गुरु जब मिल जाते हैं और सत्शिष्य जब उन्हें समझ लेता है तब काम बन जाता है। फिर शिष्य के लिए किसी होम-हवन, यज्ञ-यागादि एवं देवी-देवता की उपासना करना शेष नहीं रहता, वरन् उसके लिए तो सद्गुरु ही उपास्य देव हो जाते हैं।

सुपात्र मिले तो कुपात्र को दान दिया न दिया,
सत्शिष्य मिला तो कुशिष्य को ज्ञान दिया न दिया।
सूर्य उदय हुआ तो और दीया किया न किया,
कहे कवि गंग सुन शाह अकबर !
पूर्ण गुरु मिले तो और को नमस्कार किया न किया॥

ब्रह्मज्ञान पूर्ण ज्ञान है। यह आत्मा और ब्रह्म अभिन्न है ऐसा ज्ञान पूर्ण ज्ञान है। तू देह नहीं है और देह तथा जगत का संबंध मिथ्या है जबकि तेरा और ब्रह्म का संबंध शाश्वत है, ऐसा अनुभव करानेवाले पूर्ण गुरु कभी-कभी, कहीं-कहीं, बड़ी मुश्किल से मिलते हैं और मिलते भी हैं तो साधारण जीवों की नाईं खाने-पीने, पहनने-ओढ़नेवाले दिखते हैं। अतः उनमें श्रद्धा होना कठिन होता है।

ईश्वरोगुरुरात्मेति मूर्तिभेदे विभागिनः।
व्योमवत् व्याप्तदेहाय तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

गुरु भले सामान्य मनुष्य की तरह दो हाथ-पैरवाले दिखें लेकिन अनंत-अनंत ब्रह्माण्डों में व्याप्त होते हैं। आकाश कितना व्यापक होता है किन्तु वह आकाश भी उनके भीतर होता है इतने वे व्यापक होते हैं। इसलिए शिष्य कभी यह न सोचे कि : 'गुरु ने जब मंत्रदीक्षा दी थी केवल उसी समय गुरु मेरे पास थे और अब मैं कहीं जाकर सीधा-टेढ़ा करूँगा तो गुरु को पता नहीं चलेगा।' गुरु भले कहें-न-कहें लेकिन अंतरात्मभाव से गुरु वहाँ भी फटकारते हैं कि : 'ऐ ! क्या करता है ?'

अगर अच्छा काम करते हैं तो अंतर्यामी रूप से गुरु प्रेरणा भी देते हैं कि : 'ठीक है... शाबाश है, बेटा !' प्रत्येक शिष्य को इस बात का अनुभव होगा।

दीक्षा के निमित्त से गुरु-शिष्य के बीच एक सूक्ष्म तार जुड़ जाता है। अगर आपके चार पैसे के यंत्र 'कोर्डलेस' का बटन दबाने पर सेटेलाइट से अमेरिका में घंटी बज सकती है तो यह तो मंत्र है। मंत्र से मन सूक्ष्म, मन से मति सूक्ष्म, मति से जीव सूक्ष्म, जीव से प्रकृति सूक्ष्म और प्रकृति से भी परब्रह्म परमात्मा को पाये हुए महापुरुषों का तत्त्व सूक्ष्म होता है और आपका भी तत्त्व सूक्ष्म है तो गुरु को पता क्यों नहीं चलेगा ? चीज जितनी सूक्ष्म होती है उतनी व्यापक होती है। जितनी सूक्ष्म होती है उतनी ही प्रभावशाली होती है। पानी की एक बूँद को गर्म करो तो वाष्प बनने पर उसमें १३०० गुनी ताकत आ जाती है। ऐसे ही अपने मन को साधन-भजन और संयम से सूक्ष्म कर दो तो उसमें भी बड़ी शक्ति आ जाती है। मन को तो साधन-भजन से सूक्ष्म कर भी लिया लेकिन जिसकी सत्ता से साधन-भजन किया वह तो परम सूक्ष्म है। उसका ज्ञान पा लो तो फिर सूक्ष्म करने की भी जरूरत नहीं पड़ती।

यह बड़ी सूक्ष्म बात है। इस तत्त्वज्ञान की बात को सुनने का मौका देवताओं को भी नहीं मिलता क्योंकि वे भोग-सुख में ही मस्त रहते हैं। उनके पास बुद्धि तो होती है किन्तु वह बुद्धि भोग-सुख में ही खर्च हो जाती है। आत्मज्ञान में रुचि पुण्यवानों को ही होती है। तुलसीदासजी ने भी कहा है :

बिनु पुन्य पुंज मिलही नहीं संता।

पुण्य नहीं, पुण्यों का पुंज जब एकत्रित होता है तब संत मिलते हैं, संतों के पास जाने की रुचि होती है। किसीने कहा है कि :

''अगर सात जन्मों के पुण्य हों तभी आत्म-साक्षात्कारी संत के द्वार पर जाने की इच्छा होती है किन्तु जा नहीं पाते, कोई-न-कोई काम आ जाता है। दूसरे सात जन्म के अर्थात् १४ जन्म के पुण्य जोर करते हैं तब उनके द्वार पर तो जा सकते हैं किन्तु वे आयें उसके पहले ही होगा कि 'फिर कभी आयेंगे' या कार्यक्रम पूरा होने पर ही पहुँच पाते हैं। जब तीसरे सात जन्म के अर्थात् २१ जन्म के पुण्य जोर करते हैं तभी उनके सान्निध्य में, उनके चरणों में पहुँच पाते हैं और उनके दैवी कार्यों एवं अनुभवों से जुड़ पाते हैं।''

*

गुरु के सत्संग-सान्निध्य का मूल्य

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

बाबा गंभीरनाथ नाथ संप्रदाय के एक सिद्ध योगी थे। एक बार वे गया के पास एक पहाड़ पर विराजमान थे। उन्हें भीड़ बिल्कुल पसंद न थी, किन्तु जब साधक दर्शन के लिए आते तो उन्हें सत्संगामृत का पान कराते।

जिस पहाड़ पर बाबाजी विराजमान थे उसी पहाड़ की तलहटी में चोर-लुटेरों का एक गाँव था। पहाड़ पर होनेवाली चहल-पहल उन लुटेरों की नजर में आ गयी। पूछताछ करने पर उन्हें पता चला कि पहाड पर एक बाबाजी विराजमान हैं। उनके दर्शन के लिए अनेकों भक्त वहाँ जाते हैं। उन लुटेरों ने अनुमान लगाया कि भक्तगण दर्शन के लिए जाते हैं तो बाबाजी के पास खूब माल-सामान एकत्रित हुआ होगा।

मार्ग पर आते-जाते साधकों को लूटने से उनका आना-जाना बंद हो जाएगा इस डर से लुटेरों ने बाबाजी को ही लूटने की योजना बनायी। एक रात्रि को वे बाबाजी की कुटिया पर डाका डालने गये। पहले तो पत्थरबाजी करके लुटेरों ने उन्हें डराना चाहा। पत्थरों के गिरने की आवाज सुनकर एक भक्त ने बाबाजी को बताया कि : ''पहाड़ की तराई में लुटेरों की बस्ती है और वे लोग ही चोरी करने आये हैं।''

''इतनी-सी बात है ? चलो, उन्हें बुला लायें।'' ऐसा कहकर बाबाजी बाहर निकले। इतने में ही एक पत्थर बाबाजी के सिर पर आकर लगा। सिर से खून बहने लगा। बाबाजी ने जोर से आवाज लगाते हुए कहा :

''अरे भाइयों ! पत्थर मारने की जरूरत नहीं है। तुम लोग यहाँ आ जाओ एवं जो चाहिए वह ले जाओ।''

बाबाजी खुद ही चोरों को बुलाकर अंदर ले गये। सब सामान बताते हुए कहने लगे : ''जो सामान चाहिए, सब तुम्हारा ही है। खुशी से ले जाओ। थोड़े दिनों के बाद फिर से आना। तब तक दूसरा सामान भी आ जाएगा।''

चोरों को बाबाजी की सरलता देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ ! वहाँ उपस्थित साधकों को तो उनसे भी ज्यादा आश्चर्य हुआ कि : 'बाबाजी स्वयं लुटेरों को आमंत्रण दे रहे हैं ! परन्तु संतों की लीला तो संत ही जानें !'

ज्यों केले के पात में, पात पात में पात।
त्यों संतन की बात में, बात बात में बात॥

चोरी के दिन के बाद भी रोज सत्संग होता रहा। कई भक्त आते एवं दक्षिणा में कुछ-न-कुछ रख जाते। ठीक १५ दिन के बाद लुटेरों ने पुनः द्वार खटखटाए। एक भक्त ने द्वार खोला और देखा तो वे ही लुटेरे ! बाबाजी उन्हें देखकर खड़े हो गये एवं बोले :

''आओ आओ। इस बार माल थोड़ा ज्यादा है। सब तुम्हारा ही है। खुशी से ले जाओ।''

बाबाजी ने पुनः पूरी कुटिया खाली करवा दी। उनके जाने के बाद बाबाजी बोले :

''वाह ! अब झंझट गयी। जितना ज्यादा माल होता है उतना ही उसको सँभालने की झंझट करनी पड़ती है। भगवान ! तू कितना दयालु है ! मेरी मुसीबत तूने जान ली और उसका समाधान भी कर दिया।''

पहली बार तो चोरी के विषय में कोई कुछ न बोला था किन्तु दूसरी बार की चोरी के बाद चोरी का विषय चर्चा का विषय बन गया। 'गुरु के माल-सामान की सुरक्षा प्राणों से भी प्यारी होनी चाहिए। यह जगह सलामत नहीं है, अतः हमें स्थान बदल देना चाहिए... दान की चोरी तो उन्हें न जाने किस नर्क में ले जाएगी ?...' भक्तों के बीच होती यह खुसुर-फुसुर बाबाजी के कानों तक भी गयी। तब बाबाजी ने सत्संग में ही शिष्यों से पूछा : ''क्या करना चाहिए ?''

अधिकांश साधकों ने स्थान बदलने की ही बात कही। पीछे बैठा हुआ एक साधक ध्यान से ये बातें

सुन रहा था, किन्तु कुछ बोल नहीं रहा था। उस पर बाबाजी की दृष्टि पड़ी तो बाबाजी ने पूछा :

''माधव ! तू क्या कहता है ?''

तब माधव ने अत्यंत विनम्रतापूर्वक कहा :

''बाबाजी ! आप यहीं रहिये। न जाने किन पुण्यों के प्रताप से आपके सत्संग-सान्निध्य का लाभ हमें मिल रहा है वह मैं नहीं जानता किन्तु उसके मूल्य का आकलन भी मैं नहीं कर सकता। आपने ही सत्संग के दौरान कहा था कि 'भगवान से भी सत्संग की महिमा ज्यादा है।' बाबाजी ! मुझे सेवा का एक मौका दीजिये। लुटेरों को जो चाहिए, उस सीधा-सामान की पूर्ति मैं स्वयं कर दूँगा अथवा आप उन्हें लुटाना चाहते हों तो भले लुटायें। यह शिष्य आपका दिया हुआ ही आपको अर्पण करता है । उसका सदुपयोग होने दीजिए । बाबाजी ! लुटेरों को बता दें कि पंद्रह दिन की जगह रोज आयें। मुझे रोज सेवा का मौका मिलेगा।'' इतना कहकर माधव बाबाजी के चरणों में गिरकर रो पड़ा।

गुरु तो दया की खान होते हैं। वे साधक के हृदय के भावों को जान गये। बाबाजी ने एक साधक को गाँव में भेजकर लुटेरों के सरदार को बुलवा लिया और उससे कहा :

''देख भाई ! अब तुम्हें यहाँ तक आने की मेहनत नहीं करनी पड़ेगी। तुम्हें जो भी सीधा-सामान चाहिए उसे यह माधव तुम्हारे घर तक पहुँचा देगा।''

लुटेरों के सरदार को अत्यंत विस्मय हुआ। जब उसने पूरी बात सुनी तो उसका हृदय भी परिवर्तित हो गया और गद्गद् कंठ से बोला :

''बाबाजी ! आप यहाँ मौज से रहें। अब आपको कोई भी परेशान नहीं करेगा। हमारे अपराधों को माफ कर दें...'' इतना कहते-कहते वह बाबाजी के चरणों में गिर पड़ा। बाबाजी ने भी उसके सिर पर प्रेमपूर्वक अपना करकमल रख दिया।

धन्य है उन सत्‌शिष्यों को जो संतों के सान्निध्य एवं सत्संग की महिमा को जानते हैं। सत्संग एवं गुरु के सान्निध्य के लिए वे अपना सर्वस्व तक न्यौछावर करने को तत्पर रहते हैं। ऐसे सत्‌शिष्यों का दिव्य भाव लुटेरों का हृदय भी बदल दे इसमें क्या आश्चर्य ?

शास्त्रों में गुरुमहिमा

न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः।
न गुरोरधिकं ज्ञानं तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

'गुरु से बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है। गुरु से बढ़कर कोई तप नहीं है। गुरु से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं है। ऐसे श्री गुरुदेव को प्रणाम है।' ('श्रीगुरुगीता' से)

*

यथा यथा जात्यन्धस्य रूपज्ञानं न विद्यते।
तथा गुरूपदेशेन विना ज्ञानं न विद्यते॥

'जिस प्रकार जन्म से अन्धे मनुष्य को रूप का ज्ञान नहीं होता है उसी प्रकार गुरु के उपदेश के बिना यथार्थ ज्ञान नहीं होता है।'

कर्णधारं गुरुं प्राप्य तद्वाक्यं प्लववद्दृढम्।
अभ्यासवासनाशक्त्या तरन्ति भवसागरम्॥

'लोग कर्णधार गुरु को पाकर, गुरुवाक्य की सुदृढ़ नौका पर आरूढ़ होकर, अभ्यास-धारणारूपी शक्ति से संसार-सागर को पार करते हैं।'

दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्वदर्शनम्।
दुर्लभा सहजावस्था सद्‌गुरोः करुणां विना॥

'सद्‌गुरु की करुणा-कृपा के बिना विषयों का त्याग दुर्लभ है, तत्त्व-दर्शन करना दुर्लभ है, आत्मज्ञान से प्राप्त सहजावस्था दुर्लभ है।'

(स्वामी श्री शिवानंदजी की पुस्तक 'गुरुतत्त्व' से)

*

राम-नाम कै पटंतरे, देबे कौं कछु नाहिं।
क्या ले गुर संतोषिए हौंस रही मन माहिं॥

'सद्गुरु ने मुझे राम का नाम पकड़ा दिया है। मेरे पास उसके बराबर ऐसा क्या है जो गुरु को दूँ ? क्या लेकर उनको संतुष्ट करूँ ? मन की अभिलाषा मन में ही रह गयी कि, क्या दक्षिणा चढ़ाऊँ ? वैसी वस्तु कहाँ से लाऊँ ?'

पीछे लागा जाइ था, लोक बेद के साथि।
आगैं थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि॥

'मैं भी लोक-वेद की गलियों में औरों की ही तरह भटक रहा था। मार्ग में गुरु मिल गये सामने आते हुए और ज्ञान का दीपक पकड़ा दिया मेरे हाथ में। इस उजाले में अब भटकना कैसा ?'

'कबीर' सतगुर ना मिल्या, रही अधूरी सीष।
स्वांग जती का पहरि करि, घरि-घरि माँगै भीष॥

कबीरजी कहते हैं : 'उनकी सीख अधूरी ही रह गयी कि जिन्हें सद्गुरु नहीं मिले। संन्यासी का स्वांग रचकर, भेष बनाकर घर-घर भीख ही माँगते-फिरते हैं वे।' ('कबीर साहब की सुबोध साखियाँ' से)

❊

गुरुचरणरज की महिमा

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू।
समन सकल भव रुज परिवारू॥
सुकृति संभु तन बिमल बिभूती।
मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी।
किएँ तिलक गुन गान बस करनी॥
गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन॥

'मैं गुरुमहाराज के चरणकमलों की रज की वंदना करता हूँ जो सुरुचि (सुंदर स्वाद), सुगंध तथा अनुरागरूपी रस से परिपूर्ण है। वह अमर मूल (संजीवनी जड़ीबूटी) का सुंदर चूर्ण है जो संपूर्ण भवरोगों के परिवार को नाश करनेवाला है। वह रज सुकृती (पुण्यवान पुरुष) रूपी शिवजी के शरीर पर सुशोभित निर्मल विभूति है और सुंदर कल्याण और आनंद की जननी है। भक्त के मनरूपी सुंदर दर्पण के मैल को दूर करनेवाली और तिलक करने से गुणों के समूह को वश में करनेवाली है। श्री गुरुमहाराज के चरणों की रज कोमल और सुन्दर नयनामृत-अंजन है, जो नेत्रों के दोषों का नाश करनेवाला है।'

('श्रीरामचरितमानस' से)

❊

'पुस्तकें पढ़कर जो शब्दज्ञान मिलता है उससे अभिमान हो जाता है, किन्तु सद्गुरुकृपा से, ईश्वरकृपा से प्राप्त हुआ ज्ञान विनय, विवेक, सद्गुण और सदाचार लाता है।

पारस के परसन ते, कंचन भई तलवार।
तुलसी तीनों ना गये, धार मार आकार॥
ज्ञान हथौड़ा हाथ लै, सद्गुरु मिला सुनार।
तुलसी तीनों मिट गये, धार मार आकार॥

सद्गुरु ही संसार-सागर के माया-मगर से बचाते हैं, अंदर की वृत्तियों का विनाश करते हैं, वासना-विकार मिटा देते हैं और संसार-सागर से पार करा देते हैं।' – संत डोंगरेजी महाराज (कल्याण के 'शिक्षांक' से)

❊

'संसार में मनुष्य वही है जिसको त्रिविध दुःखरूप संसार से मुक्त होने की तीव्र इच्छा है। ऐसे आत्मजिज्ञासु मनुष्य संसार में विरले होते हैं। मनुष्य तो संसार में अनेक हैं परंतु वे यदि आत्मजिज्ञासा से शून्य हैं तो निरे पशु हैं। आत्मज्ञान का पात्र बननेवाला मनुष्य ही भाग्यवान है जिसने संसार में जन्म ही इसलिए लिया है कि पुनर्जन्म न हो। ऐसा बुद्धिमान मनुष्य गुरुमुख से प्राप्त हुए संक्षिप्त तत्त्वोपदेश को अपने बुद्धि-विवेक-बल से विशुद्ध रूप से ग्रहण करता है।' ('श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' से)

❊

ईश्वर तैं गुरु में अधिक धारै भक्ति सुजान।
बिन गुरु भक्ति प्रवीन हूँ लहै न आतम ज्ञान॥
हरि हर आदिक जगत में पूज्य देव जो कोय।
सद्गुरु की पूजा किए सब की पूजा होय॥

('विचारसागर' वेदान्तग्रंथ)

आत्मतृप्ति में ही जीवन-सार्थक्य

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

'जो ध्यानयोग में युक्त हुआ योगी लाभ-हानि आदि में निरंतर संतुष्ट है तथा मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए है, मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है वह मुझमें अर्पण किए हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।' **(गीता : १२.१४)**

भगवान को प्राप्त होने पर भक्त नित्य-निरंतर संतुष्ट रहता है क्योंकि न तो उसका भगवान से कभी वियोग होता है और न उसको नाशवान संसार की कोई आवश्यकता ही रहती है। उसको तो बस, एक भगवान के साथ ही अपने नित्य, शुद्ध संबंध का अनुभव होता रहता है। अतः भगवान में ही उसका दृढ़ निश्चय होता है। जब साधक एकमात्र भगवत्प्राप्ति को ही अपना उद्देश्य बना लेता है, स्वयं भगवन्मय हो जाता है तब मन-बुद्धि अपने आप भगवान में लग जाते हैं।

श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : **संतुष्टः सततं योगी...** 'संतोष' माने तृप्ति। तृप्ति पाना यानी भीतर का ठिकाना पाना। जिसने धर्म का गूढ़ रहस्य समझ लिया है उसीने भीतर का ठिकाना पाया है, वही वास्तव में संतुष्ट अर्थात् अपने आपमें तृप्त है।

भोग की इच्छा से ही मनुष्य असंतुष्ट रहता है। एक इच्छा की पूर्ति करते ही दूसरी इच्छा उत्पन्न हो जाती है जिससे मनुष्य निरंतर सुखी नहीं रह पाता है। संसार के सभी सुखों में कामसुख के पीछे व्यक्ति अपना सब कुछ न्यौछावर कर देता है। वह माँ-बाप को छोड़ देता है, इज्जत-आबरू धूल में मिला देता है, कुल-मर्यादा, बड़ों की प्रसन्नता सब मिट्टी में मिला देता है लेकिन इतना बलिदान देने के बाद भी उसका कामसुख सतत नहीं टिकता।

पंद्रह-बीस दिन या महीनेभर का संयम पालने से शरीर में ब्रह्मचर्य की शक्ति एकत्रित होती है और एक ही बार संसार-व्यवहार करने से संयम का वह खजाना लुट जाता है, शक्ति नष्ट हो जाती है। उसके बदले में सुख तो क्षणिक मिलता है और बाकी रह जाती है खिन्नता, ग्लानि, कमजोरी, चिन्ता, हीनता और दीनता। यह सुख भी सतत संतुष्ट नहीं रखता। जो क्षणिक सुख मिलता है वह भी काम-विकार का सुख नहीं होता वरन् जो संयम किया था, उसके ह्रास होने का सुख मिलता है। जैसे ही वह एकत्रित की गई संयम की शक्ति नष्ट होती है वैसे ही अन्दर का सुख भी गायब हो जाता है।

अन्य भोगों में भी इसी तरह क्षणिक सुख मिलता है। आपने परिश्रम करके जो धन कमाया उस कमाई को खर्च करके आपको संतोष मिला तो यह संतोष आपकी मज़दूरी का, परिश्रम का संतोष है और परिश्रम से मिला हुआ संतोष हमेशा टिकता नहीं है क्योंकि वह सुख परिश्रम के आधीन है और आपका परिश्रम अल्प है। मन, बुद्धि, जीवन, धारणाएँ अल्प हैं तो अल्प से जो सुख मिलेगा वह भी अल्प ही होगा। इसी प्रकार निंदा करने का सुख भी सतत नहीं रहता है। चौबीस घंटे सोये रहने का सुख भी सतत नहीं रहता और तंदुरुस्ती का सुख भी सतत नहीं रहता।

जिसने भगवान को प्राप्त कर लिया है ऐसा योगी युद्ध करते हुए भी संतुष्ट रह सकता है। युद्ध में जीतने पर भी संतुष्ट रहता है और हारने पर भी संतुष्ट रह सकता है। भोग में भी संतुष्ट रहता है और त्याग में भी संतुष्ट रहता है।

एक संत महापुरुष थे। बहुत लोग उन्हें मानते थे। लोग उनके चरणों में प्रेम से बहुत कुछ अर्पण कर

देते थे। एक बार कुछ चोरों ने सोचा कि : 'इन बाबाजी के पास बहुत धन-संपत्ति है तो इनके यहाँ हाथ डालने से बहुत माल मिलेगा।' एक रात को चोरों ने अपने आयोजन के अनुसार बाबाजी को छुरा दिखाकर सब कुछ दे देने के लिए कहा।

जहाँ पकड़ होती है, 'मेरा-तेरा' होता है, वासना होती है वहाँ विरोध होता है। वे संत तो मस्त थे अपनी मस्ती में। उन्होंने अपने कपड़े इत्यादि सब चोरों को दे दिया और कौपीन पहने हुए निकल पड़े अपनी

आत्ममस्ती में। चोरों ने सोचा : 'बाबाजी कहीं अपने भक्तों को या पुलिस को बुलाने तो नहीं गए होंगे ?' देखा तो वे महापुरुष दूर खड़े होकर बड़ी मस्ती में नृत्य कर रहे थे और गाये जा रहे थे : 'अभी-भी नफे में हूँ... तक-धिना-धीन...'

चोरों के सरदार ने पूछा : ''आप यहाँ नाच क्यों रहे हैं ? कहीं इस जमीन के नीचे कुछ गड़ा हुआ तो नहीं है ?''

संत : ''इस जमीन के अंदर कुछ गड़ा हुआ नहीं है। मैं नाच इसलिए रहा हूँ कि मैं जब जन्मा था तब मेरे पास कुछ भी न था, एकदम नग्न था पर आज यह कौपीन तो है। इतना खाया-पिया वह भी नफे में, साथ ही परमात्मा का अखूट खजाना भी है। इसलिये और सब कुछ लुट जाने पर भी मैं नफे में हूँ।''

उन संत महापुरुष की निर्दोष मति से चोरों का सरदार बड़ा प्रभावित हुआ और चोरी का धंधा छोड़कर उनका सेवक बन गया, सत्संगी बन गया।

इतना ज्ञान हम लोगों को भी आ जाये तो हम भी सतत संतुष्ट रह सकते हैं। इसलिए भगवान कहते हैं : 'तुम सोच लो कि तुम्हारे लिए जगत की चीजें शाश्वत हैं कि भगवद्प्राप्ति शाश्वत है ? दुनिया का सुख सदा रहेगा कि आत्मसुख सदा रहेगा ? शरीर की सत्ता सदैव रहेगी कि चैतन्य सत्ता सदैव रहेगी ?'

इन बातों को गहराई से सोचने से विवेक जागृत होगा और एहसास होगा कि आत्मा के अलावा कुछ भी सतत नहीं रह सकता है।

भक्ति के रास्ते चलनेवाला मनुष्य कुशल होना चाहिए। आलसी, निकम्मा, प्रमादी, बुद्धू, मूर्ख, अति भोला व्यक्ति कभी ईश्वरप्राप्ति नहीं कर सकता है। प्रथम तो जो कार्य हाथ में लें वह पहले से ही सोच-समझकर लेना चाहिए और एक बार हाथ में लिए हुए कार्य को पूरा करके ही छोड़ना चाहिए। भगवान के भक्त को दृढ़निश्चयी बनना चाहिए। महावीर, बुद्ध आदि महान् कैसे बने ? क्योंकि वे दृढ़निश्चयी थे।

एक बार स्वामी रामतीर्थ के मन में विचार आया

कि : 'चलो, एकांत में जाएँ।' एकांत के लिए उन्होंने एक गुफा भी खोज ली। तब लोगों ने कहा : ''इस गुफा में पहले भी कई साधु गये हैं लेकिन वापस लौट कर कोई नहीं आया। वे अंदर ही मर गये और भूत होकर गुफा में भटक रहे हैं। आप कृपया इस गुफा में न जाएँ।''

लोगों के मना करने पर भी स्वामी रामतीर्थ उस गुफा में गये और थोड़े दिन बाद वापस लौटकर आये। तब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्हें आश्चर्यचकित देखकर स्वामी रामतीर्थ ने कहा :

''राम को राम से बढ़कर कौन मिल सकता है ? वहाँ न कोई भूत था, न कोई प्रेत था। जहाँ दृढ़ निश्चय होता है वहाँ भूत-प्रेत हों तो भी कुछ नहीं कर सकते।''

दृढ़ निश्चयवाले को प्रतिकूलता में भी राह मिल जाती है। इस प्रकार दृढ़ श्रद्धा से, दृढ़ संकल्प से किया हुआ जप-ध्यान बहुत लाभ देता है। दृढ़ संकल्प के बल से मीरा ने विष को अमृत में बदल दिया था और विषधर सर्प भी नौलखा हार बन गया था। महावीर भी दृढ़ता से लगे तो अपने परम लक्ष्य तक पहुँच गये। कहते हैं कि बुद्ध भी वृक्ष के नीचे दृढ़ संकल्प करके बैठे और अंत में लक्ष्य-प्राप्ति करके ही उठे। ऐसे ही आप भी छोटा-मोटा नियम तो लें परंतु दृढ़ता से उसे पूरा करें।

आपका जीवन इतना महकना चाहिए कि लोगों को आपके दर्शन मात्र से आनंद मिलने लगे। आप सबसे प्यार करें। स्वामी रामतीर्थ कहते थे कि : 'तुम नौकरों को चाहोगे तो वे तुम्हारे कार्य को चाहेंगे।'

असंतुष्ट व्यक्ति प्यार नहीं कर सकता है। जो संतुष्ट व्यक्ति है वही सच्चा प्यार कर सकता है।

वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि व्यक्ति जब क्रोध करता है तब उसके शरीर से प्राणबल क्षीण होता जाता है। आप सतत क्रोध नहीं कर सकते लेकिन सतत संतुष्ट रह सकते हैं। आधे घण्टे तक क्रोध करने से मनुष्य थकान का अनुभव करने लगता है जबकि आधे घंटे तक आत्मसंतोष में रहने से सारी थकान उतर जाती है।

असंतोष, खिन्नता, चिंता आपकी जीवनशक्ति को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है जबकि संतोष, प्रसन्नता, निश्चिंतता आपकी जीवनशक्ति को बढ़ाते हैं।

मन की जरा-सी भी अशांति मनुष्य को अशांत बना देती है और मन का जरा-सा हर्ष मनुष्य को प्रफुल्लित कर देता है। चित्त की वृत्तियाँ एक जैसी नहीं रहतीं, वरन् बदलती रहती हैं। संसार भी एक जैसा नहीं रहता है परंतु इन सबको देखनेवाला परमात्मा सदैव एक ही है। उस एक परमात्मा को विवेक, धारणा, ध्यान, समाधि, उपदेशादि से समझकर आप उसी एक में संतुष्ट होने का अभ्यास करोगे तो जल्दी ही आत्मपद में स्थित हो जाओगे। फिर तो राजाओं के राजा, सम्राटों के सम्राट, शहनशाहों के भी शहनशाह बन जाओगे।

स्वामी रामतीर्थ अमेरिका के प्रेसिडेन्ट से मिले और बातचीत करते हुए कहने लगे :

''राम बादशाह आज यहाँ आया। राम बादशाह कल उस जगह जायेगा।'' इत्यादि।

प्रेसिडेन्ट ने पूछा : ''आपके पास है तो कुछ नहीं, फिर अपनेको 'राम बादशाह' क्यों बोलते हो ?''

स्वामी रामतीर्थ : ''कुछ नहीं है तभी तो मैं बादशाह हूँ।''

भगवान को तो सभी प्रिय होते हैं परंतु भक्त को भगवान के सिवाय और कहीं प्रेम नहीं होता है। भक्त के जीवन में भगवान ही सब कुछ होते हैं इसलिए भगवान को भी भक्त प्रिय होता है।

आप भी अपनी प्रियता भगवान की ओर लगाइए। संसार के नश्वर पदार्थों की प्रीति तो नष्ट होती, बदलती रहती है लेकिन सच्चे हृदय से की गई ईश्वरीय प्रीति कभी नहीं बदलती अपितु वह तो परम संतोष का, संतुष्ट अवस्था का अनुभव करा देती है। आप भी आत्मप्रीति के, भगवद्प्रीति के महासागर में गोता लगाइये और अमरता का, शाश्वत आनंद का अनुभव कर लीजिए। **संतुष्टः सततं योगी** हो जाइये।

ॐ आनंद... ॐ माधुर्य... ॐ शांति...

*

वह तत्त्व है आपका आत्मस्वरूप

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

हम समझते हैं कि परमात्मा हमसे दूर किसी देश में, किसी स्थान में बैठकर सृष्टि का संचालन कर रहे हैं। जब पता चलेगा तब पायेंगे कि : 'अरे ! वे परमात्मा दूर नहीं हैं । सर्वत्र वे ही हैं, हम नहीं ।' आज तक जिसको 'मैं... मैं...' करके जान रहे थे वह 'मैं' असली नहीं है । हमारा वह माना हुआ 'मैं' विराट चैतन्य परमात्मा में लीन हो जाता है । हमारा असली 'मैं' अपना शुद्ध स्वरूप प्रगट करता है :

शिवोऽहम्... सच्चिदानन्दोऽहम्... शुद्धोऽहम् ।

प्रकृति के कार्य कितने भी शुद्धि से करो लेकिन उनमें कर्त्ताभाव आने से वे अशुद्ध हो ही जाते हैं । उनमें कोई न कोई दोष आ ही जाता है। आत्मज्ञान से ही परम शुद्धता, परम निर्मलता उपलब्ध होती है ।

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ।

ज्ञान में ही सम्पूर्ण कर्मों की परिसमाप्ति होती है ।

आत्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिये चार उपाय बताये गये हैं : (१) शम (२) संतोष (३) विचार और (४) सत्संग

देहाध्यासी को सब पाप-ताप-सन्ताप प्राप्त होते हैं। हाड़-मांस की देह में अहंता और देह के सम्बन्धों में ममता रखना सब दुःखों का मूल है। इस देह से परे, देह का संचालन करनेवाले चित्त को जो सत्ता दे रहा है उस चैतन्य आत्मदेव का, परमात्मदेव का वास्तविक स्वरूप हम नहीं जानते हैं। इसलिये मानते हैं कि हमारा देव कोई आकाश-पाताल में है । हमारा ईश्वर कोई देश विशेष में है। हमारा परमात्मा क्रियासाध्य है।

ईश्वर या परमात्मा क्रियासाध्य चीज नहीं है । क्रिया से जो चीज पैदा होती है वह क्रिया का फल देकर नष्ट हो जाती है । क्रिया प्रकृति में होती है । प्रकृति को सत्ता परमात्मा से मिलती है। सबको सत्ता देनेवाला परमात्मा क्रियासाध्य नहीं हो सकता ।

क्रिया चित्त को कर्त्तृत्व भाव में ले आती है। क्रिया को जहाँ से सत्ता मिलती है उस सत्तास्वरूप परमात्मा का अनुभव करने के लिये चित्त को सूक्ष्म करना आवश्यक है। सूक्ष्म और शुद्ध चित्त अन्तर्मुख होकर परमात्मा में विश्रांति पाता है । बहिर्मुख चित्त देह के तरफ, जगत के तरफ भागता है । अन्तर्मुख चित्त स्वरूप की विश्रांति के तरफ झुकता है ।

हालाँकि चित्त सतत एकाग्र नहीं रहता है, फिर भी चित्त को एकाग्र करने के कुछ उपाय हैं। कभी ध्यान में डूबें। ध्यान से जागें तो गुरुमंत्र का या ॐ का जप करें। जप से विवेक-वैराग्य प्रखर होते हैं। प्रणव के, भगवन्नाम के पवित्र जप से दीक्षित साधक की वाणी और वृत्तियों का संयम होने लगता है ।

ध्यान व जप से उपराम हुए तो स्वाध्याय करें। स्वाध्याय माने 'स्व' का अध्ययन । अपना स्वरूप क्या है ? यह हाड़-मांस की देह मैं नहीं हूँ। इस देह में तो रोज कितना ही अन्न-जल-फल नया-नया डालते हैं। जब तक नहीं खाया तब तक रोटी है, जल है, फल है। जब खा लिया तो 'मैं' हो गया। इस देहरूप 'मैं' का कितना ही हिस्सा रोज बदल जाता है । खाये हुए भोजन के तीन हिस्से होते हैं। स्थूल हिस्से का विसर्जन रोज प्रातर्विधि में करना पड़ता है । भोजन के मध्यम हिस्से का रक्त-मांसादि बनता है । भोजन के सूक्ष्म हिस्से से मन-बुद्धि आदि पुष्ट होते हैं ।

अन्न से बने हुए तन और मन दोनों बदलते रहते हैं। 'अन्न से तन और मन बनानेवाली जो सत्ता है वह सत्ता मैं हूँ' ऐसा जो चिन्तन करता है वह देर-सबेर अपने आत्मस्वरूप को पा लेता है। ऐसे 'स्व' का अध्ययन हो ऐसे शास्त्र का, 'स्व' की खबरें दें ऐसे ग्रन्थों का विचार करें। बार-बार वेदान्त के स्वाध्याय का, श्रवण का लाभ मिलता है तो वह श्रवण बढ़ने पर मनन का रूप धारण कर लेता है । मनन बढ़ता है तो वह निदिध्यासन का रूप धारण कर लेता है। निदिध्यासन परिपक्व होता है तो ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुदेव

की थोड़ी-सी कृपादृष्टि मात्र से आत्म-साक्षात्कार हो जाता है। व्यक्ति अपने स्वरूप में जाग जाता है। उसका देहाध्यास गल जाता है। ऐसों के लिए कहा जाता है :

गलिते देहाध्यासे विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः॥

जिसका देहाध्यास गलित हो गया, जिसने परमात्मा को पा लिया उसका मन जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ-वहाँ समाधि है। अब जगत की सत्यता उसे प्रतीत नहीं होती। जगत का आकर्षण-विकर्षण उसे नचाता नहीं। वह भली प्रकार समझ लेता है कि जगत समुद्र में लहरियों की नाईं है। इस जगत में कई आये और गये... राजा-रंक-फकीर। सब चला-चली का मेला। पानी में बुदबुदा उत्पन्न हुआ, नाचा, कूदा और वापस पानी में लीन हो गया। ऐसे ही पाँच भूतों में देह का पुतला बना, चैतन्य की सत्ता से नाचा, कूदा और फिर उन्हीं पाँच भूतों में लीन हो जायगा। शरीररूपी बुदबुदे पैदा होते हैं, लीन होते हैं लेकिन उनमें ऐसा कोई तत्त्व है जो कभी पैदा नहीं होता, कभी मृतक नहीं होता, कभी लीन नहीं होता। सृष्टि की उत्पत्ति से पहले वह था, अभी है और सृष्टि का लय हो जायगा तभी भी वह रहेगा। वह तत्त्व है आपका आत्मस्वरूप।

परहित सरिस धरम नहीं भाई...

९ जून '९८ के दिन पश्चिम गुजरात में आये हुए समुद्री तूफान से पीड़ित कच्छ (गुजरात) की असहाय जनता की सेवा के लिए संत श्री आसारामजी आश्रम की ओर से व्यापक स्तर पर राहत कार्य किये गये। आश्रम की ओर से सहायता हेतु भेजी गई गाड़ी में खाद्य सामग्री तथा वस्त्रों के साथ-साथ पाँच डॉक्टर भी पीड़ित जनता की सेवा में अपनी सम्पूर्ण चिकित्सा सामग्री के साथ उपस्थित थे।

कल्याणपुर, खवरडा, पटेलका, भोपालका, नवानगर, परोडिया, पीपरिया, धार, नवा हरिपुरा, आदि गाँवों में इन साधकों द्वारा आटा, चावल, कपड़े, सूकड़ी के पैकेट, दाल, सब्जियाँ, मोमबत्तियाँ तथा माचिसों के पैकेट वितरित किये गये।

कई लोगों को मकान गिरने तथा पेड़ों के टूटने आदि से शरीर में अनेक स्थानों पर जख्म हुए थे। सेवाधारी डॉक्टरों द्वारा इनकी खूब सेवा की गई। मरीजों को उनकी आवश्यकता के अनुसार दवाइयाँ भी दी गईं। अन्य खाद्य पदार्थों तथा वस्त्रों का भी वितरण किया गया।

भेद में अभेद की उपलब्धि

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

आत्म-साक्षात्कार करना बड़ा आसान है। कैसे ? अपनी जो भेददर्शन करनेवाली बुद्धि है, उसे अभेद दर्शन में बदल दो बस। जिन कारणों से भेद दिखते हैं उन्हें मिटा दो तो साक्षात्कार हो जाएगा। सर्वत्र एक परब्रह्म परमात्मा है उसके अलावा अन्य कुछ भी नहीं है। इस बात को दृढ़ता से मानकर उसे ही चरितार्थ करने में लगे रहो।

कबीरजी ने कहा है :

कीड़ी में नानो बन बैठो, हाथी में तू मोटो क्यूँ।
बन महावत ने माथे बैठो, हाँकणवाळो तू को तू॥
नर नारी में एक बिराजे, दुनिया में दो दिखे क्यूँ।
बन बाळक ने रोवा लाग्यो, छानो राखणवाळो तू॥
ऐसो खेल रच्यो मेरे दाता, जहाँ देखूँ वहाँ तू को तू॥

ज्ञान की ऐसी समझ चाहिये, बस। चाहे कितनी भी ऊँचाई पर चले जाओ लेकिन जब तक अंतःकरण में द्वेष मौजूद रहेगा तब तक मुक्ति का अनुभव नहीं होगा, मोक्ष का सुख नहीं मिलेगा।

शास्त्रों में आता है कि मुख्य रूप से छः प्रकार के भेद होते हैं : (१) जड़-जड़ का भेद (२) जीव-जड़ का भेद (३) जीव-जीव का भेद (४) जीव-ईश्वर का भेद (५) जीव-ब्रह्म का भेद (६) जड़-चेतन का भेद

इसे सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद भी कहते हैं। हकीकत में ब्रह्म-परमात्मा सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेद से रहित हैं।

सजातीय यानी उसीकी जाति का दूसरा। जैसे, मनुष्य-मनुष्य सजातीय हुए, वृक्ष-वृक्ष सजातीय हुए। ब्रह्म-परमात्मा के लिये ऐसा नहीं है कि उसके जैसा ही दूसरा कोई हो। वह तो एक और अद्वितीय ही है। घड़े चाहे कितने भी हों लेकिन उनमें आया हुआ आकाश एक है। दीये चाहे कितने भी हों लेकिन ज्योति की अग्नि एक है। तरंगें चाहे कितनी भी हों उनका पानी एक है। ऐसे ही ब्रह्म एक है, सजातीय भेद से रहित है।

विजातीय भेद यानी अलग-अलग जाति का होना। जैसे, मनुष्य और वृक्ष विजातीय हैं। ब्रह्म में ऐसा विजातीय भेद भी नहीं है क्योंकि ब्रह्म के सिवाय दूसरा कुछ है ही नहीं तो विजातीय भेद किससे हो ?

स्वगत भेद यानी अपने भीतर ही अलग-अलग अंग होना, विभाग होना। जैसे, शरीर तो मेरा है लेकिन उसमें आँख अलग है, नाक अलग है, कान अलग है। एक ही शरीर में जो यह भेद है वह स्वगत भेद है। ब्रह्म-परमात्मा ऐसे भेदों से भी रहित है। जीव-जीव, जीव-जड़ और जीव-ईश्वर के जो भेद दिखते हैं वे भी उस ब्रह्म-परमात्मा में नहीं हैं।

किसी शिष्य ने उड़िया बाबा से पूछा : ''महाराज ! आप तो जड़-चेतन का अभेद बता रहे थे तो क्या जड़-चेतन का भेद नहीं है ?''

बाबा ने कहा : ''उपदेशकाल में जड़-चेतन का भेद बताते हैं लेकिन वास्तव में एक सच्चिदानंद परमात्मा के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है।''

जिसमें चैतन्य की घन सुषुप्ति अवस्था है वह जड़रूप दिखता है। जैसे, पत्थर, पहाड़ आदि। वृक्ष आदि ब्रह्म की क्षीण सुषुप्ति है। जैसे आप नींद में तो हो लेकिन प्रगाढ़ नींद नहीं है और चींटी आदि शरीर पर चले तो आप उसे हाथ से झटका दोगे। मच्छर काटेगा तो नींद में हाथ घुमा दोगे। करवट बदलोगे तो उसका भी आभास होगा। ऐसे ही वृक्ष को चोट तो लगती है लेकिन जैसे हमें जाग्रत में अनुभव होता है वैसा नहीं होता क्योंकि वह चैतन्य की सुषुप्ति अवस्था में है।

अज्ञानी, मूढ़ जीव ब्रह्म की स्वप्नावस्था है। जैसे स्वप्न में हम नई सृष्टि की रचना कर लेते हैं और उसके अनुभव को सत्य मान लेते हैं ऐसे ही अज्ञानी, मूढ़ जीव स्वप्नरूप संसार को सत्य मान लेते हैं। यह ब्रह्म की स्वप्नावस्था है। कोई विरला ही इस स्वप्न को स्वप्न समझकर अपने स्वरूप में जाग जाता है। वह ब्रह्म की जाग्रतावस्था है। **जो संसाररूपी स्वप्न से जागकर अपने सत्यस्वरूप को जान लेता है वह ब्रह्म में एकरूप हो जाता है।**

एक ही ब्रह्म घन सुषुप्ति में पाषाण आदि, क्षीण सुषुप्ति में वृक्ष आदि, स्वप्नावस्था में जीव-जन्तु, अज्ञानी मनुष्य, प्राणी आदि और जाग्रतावस्था में ब्रह्मवेत्ता है। अब ब्रह्मवेत्ता का शरीर कहाँ से आया ? जरा सूक्ष्म विचार करो। पत्थर-पहाड़ों पर वृष्टि होती है तब घास-फूस निकलता है तो घन पत्थर के कुछ कणों ने मिट्टी का रूप लिया। उसमें घास-फूस निकल आया। घास-फूस को गाय-बकरी ने खाया तो दूध बना। वह दूध मनुष्य पीता है तो उसमें से रज-वीर्य बनता है जो बच्चे के जन्म में सहायक होता है। उस बच्चे को आप बचपन में किसी ब्रह्मवेत्ता गुरु के चरणों में रख दो। अब वह गुरुज्ञान पाकर अपने आत्मस्वरूप को, ब्रह्मस्वरूप को जान लेता है तो वह भी ब्रह्म हो जाता है। तो वह आया कहाँ से ? पत्थर से।

ब्रह्म की घन सुषुप्ति से क्षीण सुषुप्ति में आये। क्षीण सुषुप्ति में से स्वप्न अवस्था में आये और स्वप्न अवस्था से जाग्रत अवस्था में आये तो ये सब भेद दृश्य मात्र हैं। मिट्टी है, घास है, दूध है, रज-वीर्य है, बच्चा है। वास्तव में देखो तो एक ब्रह्म ही है। ऐसे सूक्ष्म विचार करोगे तो जड़-चेतन सब ब्रह्म है, यह ज्ञान समझ में आएगा।

जड़, चेतन सब में परमात्मा का अनुभव किया जा सके इसके लिये सनातन धर्म के ऋषि-मुनियों ने उपाय खोज निकाले। गुड़, सुपारी आदि जड़ हैं लेकिन गुड़ में से गणपतिजी की मूर्ति बना दी, सुपारी में भगवद् भाव किया। पत्थर का शिवलिंग बनाकर **'ॐ नमः शिवायः'** करने लगे। श्रावण के महीने में मिट्टी के शिवजी बना लिये। इस प्रकार ऋषि-मुनियों ने जड़ में भी ईश्वर को देखने की कला सिखायी।

वेदान्त की दृष्टि से देखा जाय तो सब ब्रह्म है। सबको अपनी श्रद्धा के अनुसार वहाँ से लाभ होता

है। देह से आत्मा पर्यन्त के अलग-अलग सिद्धान्त को माननेवाले लोग हैं। वे सभी अपने-अपने सिद्धान्त को उच्च व पक्का मानते हैं लेकिन जिसे वेदान्त समझ में आ जाता है वह मत-मतान्तर के झगड़े में नहीं पड़ता है। भेद दिखते हुए भी अभेद पर उसकी नजर है। इसलिये वह कर्मकांडियों से कहता है : 'तुम जो करते हो वह ठीक है।' वह तपस्वी को भी कहता है : 'तुम जो करते हो, वह भी ठीक है।' वह जानता है कि कुछ भी करो पर सबको करने की शक्ति जहाँ से मिलती है वह मूल स्रोत तो एक ही है। सबका सार वही एक है।

जैसे मिट्टी के घड़े में आकाश है और काँच के घड़े में भी आकाश है तो काँच का काँचपना हटा दो और मिट्टी का मिट्टीपना हटा दो तो घड़े की आकृति में आया हुआ आकाश एक ही है। ऐसे ही जीव-जीव का भेद दिखनेभर को है। 'मैं गुजराती... मैं मारवाड़ी... मैं पटेल... मैं ब्राह्मण...' ये आपकी मान्यताएँ हैं। वास्तव में तो सब एक ही हैं। इनमें तनिक भी भेद नहीं है।

'कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली ?' ऐसी एक कहावत है। राजा का तख्त छोड़ दो और तेली का घाणा छोड़ दो तो वे हैं तो आदमी ही।

राजा भोज ने साधु-संतों की बहुत सेवा की तो उनको वैराग्य आ गया। उन्होंने राजपाट और खजाना छोड़कर संन्यास ले लिया। संन्यासी के कपड़े पहन लिये और हाँडी ले ली लेकिन आदमी तो वही है। चाहे राजा बना, चाहे संन्यासी बना।

ऐसे ही ईश्वर की माया की विशेषता छोड़ दो और जीव की अविद्यारूपी विशेषता छोड़ दो तो बाकी जो है वह एक है। हालाँकि माया और अविद्या भी घन सुषुप्ति और क्षीण सुषुप्ति ही है। यह ज्ञान किसी गुफा में बैठकर माला घुमाने से, उपवास रखने से नहीं मिलेगा। भक्तिभावपूर्वक ब्रह्मज्ञानी गुरु के चरणों में बैठकर आदरपूर्वक ज्ञान का श्रवण करें, फिर मनन-चिंतन-निदिध्यासन करें। तब सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद से रहित जो ब्रह्म-परमात्मा है वही मेरा आत्मस्वरूप है यह ज्ञान हो सकेगा एवं ऐसा ज्ञान जिसे हो जाता है वह भी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। सबको निरन्तर आत्म-साक्षात्कार है लेकिन उसका बोध नहीं है, उसका ज्ञान नहीं है।

जब तक दिखनेवाले भेद पर दृष्टि है तब तक अभेद तत्त्व का ज्ञान नहीं होता है। इस अभेद तत्त्व का, अखंड तत्त्व का ज्ञान गुरु की करुणा-कृपा से मिलता है। इसलिये कहा है :

गुरु बिन ज्ञान न ऊपजे, गुरु बिन मिटे न भेद।
गुरु बिन संशय ना मिटे, जय जय जय गुरुदेव॥

गुरु के बिना भेद नहीं मिटता है और जब तक भेद नहीं मिटता है तब तक भय, संशय भी नहीं जाता है। भेद मिटने पर ही भय और संशय का उन्मूलन होता है। कोई देवी या देवता प्रसन्न होंगे तो आपको मनोवांछित फल दे देंगे लेकिन सद्गुरु प्रसन्न होंगे तो उपदेश देकर, भेद मिटाकर अभेद का ज्ञान दे देंगे। तब आत्म-साक्षात्कार हो जाएगा। **सर्वं खल्विदं ब्रह्म।** उस एक के सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं है इसका अनुभव हो जाएगा।

जीवन दिव्य बनेगा तेरा...

जीवन दिव्य बनेगा तेरा, गुरुज्ञान पाने के बाद।
परम आनन्द मिल जाएगा, गुरु शरण आने के बाद॥
देख कर घटाएँ काली, कभी न होना तू निराश।
नव प्रभात निश्चित आएगा, रात्रि के ढलने के बाद॥
कर्म कर निष्काम निर्मल, शरणागत हो सद्गुरु के।
शुष्क मधुबन भी खिलेगा, पतझड़ बीत जाने के बाद॥
भक्ति की शाश्वत डगर पर, गम तो पाएगा जरूर।
किन्तु पेड़ बनता है बीज, मिट्टी में मिलने के बाद॥
गुलाब की मृदु खिलखिलाहट, कमल की मदमस्त बहार।
खिले ये कंटक-कीचड़ से युक्त, कठिन राह चलने के बाद॥
विषय विकार भोग वासना दूर कर, बन निर्विकारी भीष्म सा।
बाणों की शैय्या पे सोया, जो महाभारत युद्ध के बाद॥
कर्त्तापन का बोझ है जब तक, आत्मदृष्टि न कर पाएगा।
आशाओं का राम बनेगा, अहंकार मिटने के बाद॥
इन्सां बनता है आदमी, मुसीबतें पाने के बाद।
रंग लाती ज्यों मेंहदी, पत्थर पर घिसने के बाद॥
इस जीवन का परम लक्ष्य तू, गुरु कृपा से ही पाएगा।
गर्भ में न फिर उल्टा लटकेगा, इस जग से जाने के बाद॥

- सुदीप यदु
बैंक ऑफ इंडिया, रायपुर (म.प्र.).

आनंदमयी माँ

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

संयम में अद्‌भुत सामर्थ्य है । जिसके जीवन में संयम है, जिसके जीवन में ईश्वरोपासना है उसका जीवन सहज ही में महान् हो जाता है । आनंदमयी माँ का जब विवाह हुआ तब उनका व्यक्तित्व अत्यंत आभासंपन्न था । शादी के बाद उनके पति उन्हें संसार-व्यवहार में ले जाने का प्रयास करते रहते थे किन्तु आनंदमयी माँ संयम और सत्संग की महिमा सुनाकर, पति की थोड़ी सेवा करके, विकारों से उनका मन हटा देतीं थीं । इस प्रकार कई दिन बीते, हफ्ते बीते, कई महीने बीत गये लेकिन आनंदमयी माँ ने अपने पति को विकारी जीवन में गिरने नहीं दिया ।

आखिरकार कई महीनों के पश्चात् एक दिन उनके पति ने कहा : ''तुमने मुझसे शादी की है फिर भी क्यों मुझे इतना दूर-दूर रखती हो ?''

तब आनंदमयी माँ ने जवाब दिया : ''शादी तो जरूर की है लेकिन शादी का वास्तविक मतलब तो इस प्रकार है : शाद अर्थात् खुशी । वास्तविक खुशी प्राप्त करने के लिए पति-पत्नी एक-दूसरे के सहायक बनें न कि शोषक । काम-विकार में गिरना यह कोई शादी का फल नहीं ।''

इस प्रकार अनेक युक्तियों से और अत्यंत विनम्रता से उन्होंने अपने पति को समझा दिया ।

आनंदमयी माँ संसार के कीचड़ में न गिरते हुए भी अपने पति की बहुत अच्छी तरह से सेवा करतीं थीं । पति नौकरी करके घर आते तो गर्म-गर्म भोजन बनाकर खिलाती थीं ।

आनंदमयी माँ घर में भी ध्यानाभ्यास किया करती थीं । कभी-कभी स्टोव पर दाल चढ़ाकर, छत पर खुले आकाश में चंद्रमा की ओर त्राटक करते-करते ध्यानस्थ हो जातीं । इतनी ध्यानमग्न हो जातीं कि स्टोव पर रखी हुई दाल कोयला हो जाती । घर के लोग डाँटते तो चुपचाप अपनी भूल स्वीकार कर लेतीं लेकिन अन्दर से तो समझती कि : 'मैं कोई गलत मार्ग पर तो नहीं जा रही हूँ...' इस प्रकार उनके ध्यान-भजन का क्रम चालू ही रहा । घर में रहते हुए ही उनके पास एकाग्रता का कुछ सामर्थ्य आ गया ।

एक रात्रि को वे उठीं और अपने पति को भी उठाया । फिर स्वयं महाकाली का चिंतन करके अपने पति को आदेश दिया : ''महाकाली की पूजा करो ।'' उनके पति ने इनका पूजन कर दिया । आनंदमयी माँ में उन्हें महाकाली के दर्शन होने लगे । उन्होंने आनंदमयी माँ को प्रणाम किया ।

तब आनंदमयी माँ बोलीं : ''अब महाकाली को तो माँ की नजर से ही देखना है न ?''

पति : ''यह क्या हो गया ?''

आनंदमयी माँ : ''तुम्हारा कल्याण हो गया ।''

कहते हैं कि उन्होंने अपने पति को दीक्षा दे दी और साधु बनाकर उत्तरकाशी के आश्रम में भेज दिया ।

कैसी दिव्य नारी रही होंगी माँ आनंदमयी ! उन्होंने अपने पति को भी परमात्मा के रंग में रंग दिया । जो संसार की माँग करता था, उसे भगवान की माँग का अधिकारी बना दिया । इस भारत भूमि में ऐसी भी अनेकों सन्नारियाँ हो गयीं ! कुछ वर्ष पूर्व ही आनंदमयी माँ ने अपना शरीर त्यागा है । अभी हरिद्वार में एक करोड़ बीस लाख रूपये खर्च करके उनकी समाधि बनी है ।

ऐसी तो अनेकों बंगाली लड़कियाँ थीं, जिन्होंने शादी की, पुत्रों को जन्म दिया, पढ़ाया-लिखाया और मर गईं । शादी करके संसार-व्यवहार चलाओ उसकी ना नहीं है लेकिन पति को विकारों में गिराना या पत्नी के जीवन को विकारों में खत्म करना यह एक-दूसरे

के मित्र के रूप में एक-दूसरे के शत्रु का कार्य है। संयम से संतति को जन्म दिया यह अलग बात है किन्तु विषय-विकारों में फँस मरने के लिए थोड़े ही शादी की जाती है।

बुद्धिमान नारी वही है जो अपने पति को ब्रह्मचर्य-पालन में मदद करे और बुद्धिमान पति वही है जो विषय-विकारों से अपनी पत्नी का मन हटाकर निर्विकारी नारायण के ध्यान में लगाये। इस रूप में पति-पत्नी दोनों सही अर्थों में एक-दूसरे के पोषक होते हैं, सहयोगी होते हैं। फिर उनके घर में जो बालक जन्म लेते हैं वे भी ध्रुव जैसे, गौरांग जैसे, रमण महर्षि जैसे, रामकृष्ण जैसे, विवेकानंद जैसे बन सकते हैं।

*

भगवद्-भक्ति का चमत्कार

उस पंजाबी महिला का नाम था आनंदीबाई। देखने में तो वह इतनी कुरूप थी कि देखकर लोग भी डर जायें। उसका विवाह हो गया। विवाह से पूर्व उसके पति ने उसे नहीं देखा था। विवाह के पश्चात् उसकी कुरूपता को देखकर वह उसे पत्नी के रूप में न रख सका एवं उसे छोड़कर उसने दूसरा विवाह रचा लिया।

आनंदी ने अपनी कुरूपता के कारण हुए अपमान को पचा लिया एवं निश्चय किया कि : 'अब तो मैं गोकुल को ही अपनी ससुराल बनाऊँगी।' वह गोकुल में एक छोटे-से कमरे में रहने लगी। घर में ही मंदिर बनाकर आनंदीबाई श्रीकृष्ण की मस्ती में मस्त रहने लगी।

आनंदीबाई दिन में साधु-संतों की सेवा एवं सत्संग-श्रवण करती। सुबह-शाम घर में विराजमान श्रीकृष्ण की मूर्ति के साथ बातें करती... उनसे रूठ जाती... फिर उन्हें मनाती... इस प्रकार उसके दिन बीतने लगे।

एक दिन की बात है :

गोकुल में गोपेश्वरनाथ नामक जगह पर श्रीकृष्ण-लीला का आयोजन निश्चित किया गया था। उसमें अलग-अलग पात्रों का चयन होने लगा। वहाँ आनंदीबाई भी विद्यमान थी। पात्रों के चयन के दौरान अंत में कुब्जा के पात्र की बात चली। उस वक्त आनंदी का पति अपनी दूसरी पत्नी एवं बच्चों के साथ वहीं उपस्थित था। अतः आनंदीबाई की खिल्ली उड़ाते हुए उसने आयोजकों के आगे प्रस्ताव रखा :

''यह जो सामने महिला खड़ी है वह कुब्जा की भूमिका अच्छी तरह से अदा कर सकती है अतः उसे ही कहो न ! यह पात्र तो इसी पर जँचेगा। यह तो साक्षात् कुब्जा ही है।''

आयोजकों ने आनंदीबाई की ओर देखा। उसका कुरूप चेहरा उन्हें भी कुब्जा की भूमिका के लिए पसंद आ गया। उन्होंने आनंदीबाई को कुब्जा का पात्र अदा करने के लिए प्रार्थना की।

श्रीकृष्णलीला में खुद को भाग लेने का मौका मिलेगा इस सूचना मात्र से आनंदीबाई भावविभोर हो उठी। उसने खूब प्रेम से भूमिका अदा करने की स्वीकृति दे दी। श्रीकृष्ण का पात्र एक आठ वर्षीय बालक के जिम्मे आया।

आनंदीबाई तो घर आकर श्रीकृष्ण की मूर्ति के आगे विह्वलता से निहारने लगी एवं मन-ही-मन विचारने लगी कि : 'मेरा कन्हैया आयेगा... मेरे पैर पर पैर रखेगा... मेरी ठोड़ी पकड़कर मुझे ऊपर देखने को कहेगा...।' वह तो बस, नाटक के दृश्यों की कल्पना में ही खोने लगी।

आखिरकार श्रीकृष्णलीला रंगमंच पर अभिनीत करने का समय आ गया। उसे देखने के लिए बहुत-से लोग एकत्रित हुए। श्रीकृष्ण के मथुरागमन का प्रसंग चल रहा था :

नगर के राजमार्ग से श्रीकृष्ण गुजर रहे हैं... रास्ते में उन्हें कुब्जा मिली...

आठ वर्षीय बालक जो श्रीकृष्ण का पात्र अदा कर रहा था **उसने कुब्जा बनी हुई आनंदी के पैर पर पैर रखा और उसकी ठोड़ी पकड़कर उसे ऊँचा किया। किन्तु यह कैसा चमत्कार ! कुरूप कुब्जा एकदम सामान्य नारी के स्वरूप में आ गयी !! वहाँ उपस्थित सभी दर्शकों ने इस प्रसंग को अपनी आँखों से देखा।** आनंदीबाई की कुरूपता का पता सभी को था। अब उसकी कुरूपता बिल्कुल गायब हो चुकी थी। यह देखकर सभी दाँतों तले ऊँगली दबाने लगे !!

आनंदीबाई तो भाव-विभोर होकर अपने कृष्ण में ही खोई हुई थी... उसकी कुरूपता नष्ट हो गयी यह जानकर कई लोग कुतूहलवश उसे देखने के लिए आये।

फिर तो आनंदीबाई अपने घर में बनाये गये मंदिर में विराजमान श्रीकृष्ण में ही खोई रहतीं । यदि कोई कुछ भी पूछता तो एक ही जवाब मिलता कि :

''मेरे कन्हैया की लीला कन्हैया ही जाने...''

आनंदीबाई ने अपने पति को धन्यवाद देने में भी कोई कसर बाकी न रखी । यदि उसकी कुरूपता के कारण उसके पति ने उसे छोड़ न दिया होता तो श्रीकृष्ण में उसकी इतनी भक्ति कैसे जागती ? श्रीकृष्णलीला में कुब्जा के पात्र के चयन के लिए उसका नाम भी तो पति ने ही दिया था, इसका भी वह बड़ा आभार मानती थी।

प्रतिकूल परिस्थितियों एवं संयोगों में शिकायत करने की जगह प्रत्येक परिस्थिति को भगवान की ही देन मानकर धन्यवाद देने से प्रतिकूल परिस्थिति भी उन्नतिकारक हो जाती है, पत्थर भी सोपान बन जाता है।

अब तो नादानी छोड़िये !

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण में 'अर्जुनोपदेश' नामक सर्ग में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं :

''हे भारत ! जैसे दूध में घृत और जल में रस स्थित होता है वैसे ही मैं सब लोगों के हृदय में तत्त्वरूप से स्थित हूँ । जैसे दूध में घृत स्थित है वैसे ही सब पदार्थों के भीतर मैं आत्मरूप से स्थित हूँ। जैसे रत्नों के भीतर-बाहर प्रकाश होता है वैसे ही मैं सब पदार्थों के भीतर-बाहर स्थित हूँ। जैसे अनेक घटों के भीतर-बाहर एक ही आकाश स्थित है वैसे ही मैं अनेक देहों में भीतर-बाहर अव्यक्त रूप से स्थित हूँ ।''

हम भी कितने नादान हैं ! पति की बात मानते हैं, पत्नी की बात मानते हैं, बच्चों की हाँ में हाँ मिलाते हैं, सगे-संबंधियों की झूठी-सच्ची बातों में अपनी सहमति देते हैं लेकिन फिर भी अशान्ति की तपन नहीं मिटती, चिन्ताएँ दूर नहीं होतीं, दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता। हम उसी दलदल में फँसे रहते हैं। जबकि जिस बात से अशान्ति, चिन्ता और दुःख दूर होते हैं उन भगवान की बात मानने में आनाकानी करते हैं। उसे मानना तो दूर उसे समझना तक पसंद नहीं करते हैं। भगवान हमें अपना अंश बताते हैं और सच्चे हृदय से प्रेम करना सिखाते हैं तो हम उनको पीठ दिखाकर उन चीजों से प्रेम करते हैं जहाँ से आखिरकार धोखा ही मिलता है। परमात्मा हमारे अन्तःकरण में विराजमान हैं यह बात न तो स्वीकारते हैं और न ही

इस बात का अनुभव करने का प्रयास करते हैं। नतीजा, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि की अंधी खाइयों में भटकते रहते हैं। जब परमात्मा स्वयं आपके घट के भीतर हैं तो क्यों नश्वर को सँभालने में अपना जीवन खोते हो, भैया ! जिसे सँभालना भी नहीं है, सिर्फ जिसकी ओर निहारना भर है उसकी बात में अपना अहं विसर्जित करना भर है। तो फिर क्यों देरी करते हो ? यह सबके अनुभव की बात है कि हम जिसे सँभालना चाहते हैं वह नष्ट हुए बिना नहीं रहता क्योंकि वह स्वभाव से ही नश्वर है। जो शाश्वत है, अजन्मा है, नित्य है, अपना-आपा है उसे जाने बिना जीवन व्यर्थ गँवाने का क्या अर्थ है ? जो प्रेम हमें परमात्मा से करना चाहिए वह प्रेम हम संसार से करते हैं तो राग-द्वेष की चोटें लगती हैं। फिर भी संसार का आकर्षण नहीं छूटता। हजार-हजार धक्के खाते हैं फिर भी वही गलती करते हैं। यही तो अज्ञान है। जब इसी अज्ञान को दूर करने के लिए परमात्मा मार्ग बताते हैं तो हम उनसे मुँह फेर लेते हैं। जो सुख के स्रोत हैं, प्रेम के सागर हैं, आनंद की मूर्ति हैं, उन सच्चिदानंदघन परमात्मा को अपना माँनना और उनके संग एक हो जाना, इसी उद्देश्य के लिये तो आपको मानव जीवन मिला है न कि झूठे कपोल कल्पित संबंधों को पोसकर जीवन पूरा करने के लिये। ईश्वर के परम सहारे को छोड़कर अन्य सहारों के आश्रित रहना यह अपने आपसे धोखा है। दुःखों को संजोना है क्योंकि शाश्वत का कभी अन्त नहीं और नश्वर का कोई जीवन नहीं।

जब परमात्मा सुखस्वरूप से हमारे अन्तःकरण में विराजमान हैं तो बाहरी संबंधों, वस्तुओं और परिस्थितियों में सुख खोजने की क्या जरूरत है ? जो भरोसा परमेश्वर पर करना चाहिए वह बाहरी वस्तु, धन, पद-प्रतिष्ठा, सत्ता, संबंध या अन्य किसी पर भी किया तो वे आपसे छीने जाएँगे। यह प्रकृति का अकाट्य नियम है। जैसे, आकाश सबमें व्याप्त है वैसे ही परमात्मा चिदाकाश रूप से सर्वव्याप्त हैं। बन्धन और मुक्ति दोनों प्रकृति में होते हैं। पुरुष को न बन्धन है, न मुक्ति है। जन्म-मृत्यु आदि जो होता है, वह सब प्रकृति में खेल हो रहा है। आप इसके सिर्फ-दृष्टा बनकर देखो, स्वयं को प्रकृति से पृथक् जानो। दृष्टा और दृश्य एक कैसे हो सकते हैं ? अपने विवेक-वैराग्य को जागृत रखकर संसार के रंगमंच पर जो घटित हो रहा है उसे घटित होने दो।

भगवान और उनके द्वारा प्रदत्त परिस्थितियों में अनन्य भाव होना चाहिए। चाहे कुछ भी हो जाय, हमें तो भगवान की कृपा से ही भगवत्तत्त्व को उपलब्ध होना है। भगवान के वचनों को पकड़कर एकत्व का अनुभव करना है। भगवान की कृपा ही एक मात्र सहारा है। इसके अलावा और किसी साधन में हम रुकेंगे नहीं। 'हे प्रभु ! हमें तो केवल तेरी कृपा और तेरे स्वरूप की ही प्राप्ति चाहिए और कुछ नहीं' - ऐसा जिसका दृढ़ संकल्प-भाव होता है उसके लिये तो भगवान सहज, सुलभ हैं। विवेकी के लिये तो कुछ घड़ियाँ ही बहुत हैं अपना काम बनाने के लिये। बाहर के सहारों को छोड़कर भीतर का सहारा पाने की जिसमें तड़प है वह भगवान से दूर कहाँ और भगवान उससे दूर कहाँ ? संत-महात्मा बड़े ही दयालु होते हैं। वे हमें जीवभाव से जगाकर शिवभाव में आरूढ़ होते देखना चाहते हैं इसलिये तरह-तरह के किस्से-कहानियाँ सुनाकर हमारा विवेक-वैराग्य जगाते हैं। परमात्मा में हमारी दृढ़ स्थिति हो जाय, सच्चा प्रेम जागृत हो जाय ऐसे प्रसंग दोहरा-दोहराकर वे हमें जगाते हैं।

बुद्ध के समय काशी में एक नगरसेठ था। उसका पुत्र था यशकुमार। उसके पिता ने उसके लिये मौसम के अनुसार सुख-सुविधासंपन्न महल बनवाये थे। वर्षा ऋतु के लिये ऐसा काँच का महल बनाया था कि वह भीतर बैठकर प्रकृति के सुन्दर नजारों को देख सके। राग-रगिनियाँ, दास-दासियाँ, नर्तकियाँ तो मानो उसकी चाकरी में खड़ी ही रहती थीं। धन की कोई कमी नहीं थी। ऐश-आराम से पूर्ण जीवन था। उस समय समाज में गौतम बुद्ध का अपना विशेष प्रभाव था। उनके ज्ञान, सत्संग और कृपा के सर्वत्र चर्चे थे। यह देखकर सेठ को हुआ कि कहीं यशकुमार को वैराग्य का रंग न लगा जाय, भिक्षुओं का सान्निध्य न मिल जाय। इस डर से सेठ ने यशकुमार के लिये भोग-विलास की भरपूर समाग्रियाँ जुटा रखी थीं। ठीक उसी

तरह जैसे बुद्ध के पिता ने उन्हें ऐहिक सुखों में गिराने का भरपूर प्रयत्न और प्रबंध किया था । सेठ ने भी इसी तरह की व्यवस्था की थी मगर भगवान अपने भक्तों को सदा विकारों में पचने देना नहीं चाहते हैं ।

एक रात्रि को नृत्य देखते-देखते, गान सुनते-सुनते यशकुमार जल्दी सो गया । रात्रि को जल्दी सो जाने से उसकी थकान उतर गयी और वह थोड़े-ही समय में जाग गया । इसे दैवयोग ही कहना चाहिए कि वह अब की बार सचुमच जाग गया । वह देखता है कि नाचने-गानेवालियाँ वहीं पड़ी हैं । किसीके मुँह से लार निकल रही है तो किसी शरीर से अपानवायु पसार हो रही है । सौन्दर्य अस्त-व्यस्त हो चुका है । यशकुमार ने सोचा कि मानो ये मृत हिरनियाँ पड़ी हैं। वह विचारने लगा :

'जिन नृत्यांगनाओं के पीछे मैं दिवाना था, पागल हुए जा रहा था, वे बेसुध पड़ी हैं। जिन शरीरों से दुर्गन्ध आ रही है मैं उन्हींमें अपना जीवन पूरा कर रहा था। यह सब क्या है ? मेरा नाम यशकुमार है लेकिन मैं काम तो वही कर रहा हूँ जिससे परलोक में अपयश हासिल हो। ये जो हाड़-मांस के पुतले थे, इनमें अपना सौन्दर्य कहाँ है ? सौन्दर्य का संबंध तो किसी और से है । धिक्कार है मुझे कि मैं हाड़-मांस के शरीर को प्यार करके अपना अनमोल मनुष्य जन्म नष्ट-भ्रष्ट कर रहा था ! मेरा शरीर अभी से रुग्ण होने जा रहा है...'

जितना माणिया भोग, उतना भया रोग।

यशकुमार को आत्मग्लानि महसूस हुई । कथा कहती है कि वह धरती पकड़कर बैठ गया और फिर बार-बार उन बेसुध ललनाओं की ओर देखने लगा। उसे लगा कि ये तो जिन्दा लाशें हैं जिनके बीच मैंने काफी समय यूँ ही गँवा दिया । उसके चित्त में मानो विवेक-वैराग्य की अग्नि भभक उठी और वह सच्चे हृदय से प्रायश्चित्त करने लग गया ।

यदि सच्चे हृदय से प्रायश्चित्त किया जाय तो उसी क्षण जीव के पाप कट जाते हैं और अन्तःकरण निर्मल होने लगता है। दूसरों की निन्दा से यदि अपने पुण्य क्षीण होते हैं तो अपने दोषों पर विचारने से स्वयं के पाप कटते हैं और जीव पुण्यात्मा बनता है।

यशकुमार का अन्तःकरण शुद्ध हुआ ।

भोर हुई । हृदय में सत्त्वगुण बढ़ा । वह धीरे-से सीढ़ियों से उतरकर वहाँ से रवाना हो गया। थोड़ी दूर चलने पर यशकुमार ने देखा कि बुद्ध विहार कर रहे थे । यशकुमार उनके पास जाकर बोला :

''भन्ते ! संसार धोखा है, दुःखरूप है । उससे छूटना मुश्किल है ।''

यह सुनकर बुद्ध बोले : ''संसार एक मिथ्या भ्रम है, दुःखमय है परन्तु मुक्ति पाना कतई मुश्किल नहीं है... यदि किसी आत्मवेत्ता संत का सत्संग-सान्निध्य मिल जाय तो।''

यशकुमार बोला : ''भन्ते ! मैं आपकी शरण हूँ। आप अब मुझे स्वीकार कीजिए।''

बुद्ध ने यशकुमार के हृदय में पनपे वैराग्य के अंकुरों को देखा और उसे स्वीकार कर, अपना शिष्यत्व प्रदान कर, आत्मज्ञान का थोड़ा प्रारंभिक उपदेश दिया।

उधर सुबह हुई और दासियाँ जागीं। उन्होंने देखा कि हमारे सर्वेसर्वा स्वामी कहीं चले गये हैं !

विषय-विकारों में अपने जीवन का नाश करनेवाली ललनाओं को क्या पता कि किसीका भी सर्वेसर्वा सदा कहाँ रहता है ? रहता तो वही है जो सचमुच सबका अन्तर्यामी राम है, जो पदार्थों में आत्मरूप से स्थित है। जैसे अनेक घटों के भीतर-बाहर एक ही आकाश स्थित है वैसे ही अंतर्यामी राम अनेक देहों में भीतर-बाहर अव्यक्त रूप से स्थित है। वही सच्चा संबंध है। जो प्रेम परमात्मा से करना है वह प्रेम यदि शरीर से, पति, पत्नी, पुत्र या पुत्री के शरीर से हुआ तो वहाँ से अशान्ति मिलनी ही चाहिए क्योंकि यही प्रकृति का अकाट्य नियम है। ईश्वर के अलावा जिस सहारे को अपना माना है उससे मुसीबत आना, उसमें विघ्न आना ही है। विघ्न इसलिए आता है कि मौत के बाद जो सहारा छूट जाना है उसके पहले उस परम सुहृद सहारे को, सर्वेश्वर स्वामी को पाकर, शाश्वत तत्त्व को उपलब्ध हो जाओ।

इधर यशकुमार के माता-पिता आये बुद्ध के पास। पुत्र के विछोह के दुःख में वे रो पड़े। वे यशकुमार को समझाने लगे : ''हे पुत्र ! इतना यश, धन, ऐश-आराम छोड़कर इधर आया है ? इन भिक्षुओं के पास क्या है ? तुम्हारी चाकरी के लिये कई नौकर-चाकर हैं। मनोरंजन के लिए नृत्यांगनाएँ हैं। तुम इधर कष्टमय जीवन बिताने क्यों आये हो ?''

ऐसा कहकर वे पुनः यशकुमार को संसार में घसीटकर ले जाने का प्रयास करने लगे। बुद्ध ने देखा कि यशकुमार के मस्तिष्क में अभी-अभी वैराग्य के अंकुर पनपे हैं, संत-समागम का, मानव जीवन का महत्त्व समझ में आया है। अभी इसे सँभालना होगा न कि संसारी सुखों की तपन और धन-सत्ता-ऐश्वर्य की खुरपी लगाकर इसे उखाड़ना होगा।

बुद्ध बोले : ''इसका पुण्योदय हुआ है। इसलिए तो यह नश्वर को छोड़कर शाश्वत की ओर आया है। अब यह तुम्हारे कहने से संसार के विषयी कीचड़ में अपनी जिन्दगी, समय और शक्ति बर्बाद नहीं करेगा।'' बुद्ध ने यशकुमार के वैराग्य को पोषण दिया।

जो बोधवान हैं, तेजस्वी पुरुष हैं, उनका तेज विलासी और विकारी पुरुषों को भी निर्विकारी नारायण की ओर चलने को प्रेरित करता है। यदि लोग कहीं फिसलते हैं तो बोधवान पुरुषों के वचनों के प्रभाव से गिरने से बच जाते हैं। यही तो तत्त्ववेत्ता संतों का आध्यात्मिक तेज है।

बुद्ध ने यशकुमार की ओर नूरानी निगाहें डालते हुए वैराग्यपूर्ण वचन कहे और उसके माता-पिता को ज्ञान-वैराग्य के माहात्म्य का उपदेश दिया। यशकुमार फिर तो हिमालय की तरह अडिग होकर बुद्ध की बात मानने को कटिबद्ध हो गया। वह अपने माता-पिता का रुदन शान्त करते हुए बोला :

''विषयों में, भोगों में प्रीति होने से जब मौत मेरे केश पकड़कर मुझे शूकर-कूकर बना देगी तब आप मेरा साथ देने के लिये कहाँ आओगे ? मौत आकर मुझे नीच योनियों में, जड़ योनियों में ढकेल दे उसके पहले मैं महात्मा बुद्ध के सान्निध्य में ज्ञान पाकर परमात्मा की शरण में पहुँच जाऊँ इसमें आप सहयोग दो।''

यशकुमार के वैराग्यपूर्ण वचन सुनकर माता-पिता को सन्तोष हुआ।

महात्मा बुद्ध के शुभाशिष से यशकुमार के दृढ़ निश्चय ने जब जोर पकड़ा तो यशकुमार सचमुच सच्चा यश पाने में सफल हो गया। उसने परमात्मा के साथ एकत्व का अनुभव कर लिया। अपने हृदय में तत्त्वरूप से स्थित परमात्मा को उसने जान लिया।

यदि हृदय में विवेक-वैराग्य की जरा-सी भी चिन्गारी प्रज्वलित हो जाय और किसी बोधवान पुरुष का सान्निध्य मिल जाय फिर तो गिरानेवाले भले ही

हजारों आ जाएँ लेकिन उस परम अनुभूति को प्राप्त महापुरुष न केवल उस विवेकी को सँभालते हैं, वरन् गिरानेवालों को भी सही दिशा में मोड़ देते हैं।

इसलिए कृपानाथ ! आप भी अपने पर कृपा कीजिये। यशकुमार की भाँति आप भी नादानी छोड़कर जाग जाइये। क्योंकि विषय-विकारों में जीवन की समाप्ति हो जाती है मगर उनसे कभी सच्चा सुख नहीं मिलता। सच्चा सुख तो आत्मवेत्ताओं के सान्निध्य और सत्संग में ही मिलता है। अपने अनमोल मानव जन्म को विषय-विकारों में डुबाकर निम्न योनियों में दुःख पाने की व्यवस्था मत कीजिए।

बुद्ध पुरुषों का सत्संग पाकर, उनकी बात मानकर, ज्ञान का आदर करके अपने साथ-साथ औरों के भी कल्याण में सहभागी बनें। इसीमें आपके जीवन की सार्थकता है।

ॐ... शांति... ॐ आनन्द... ॐ माधुर्य...
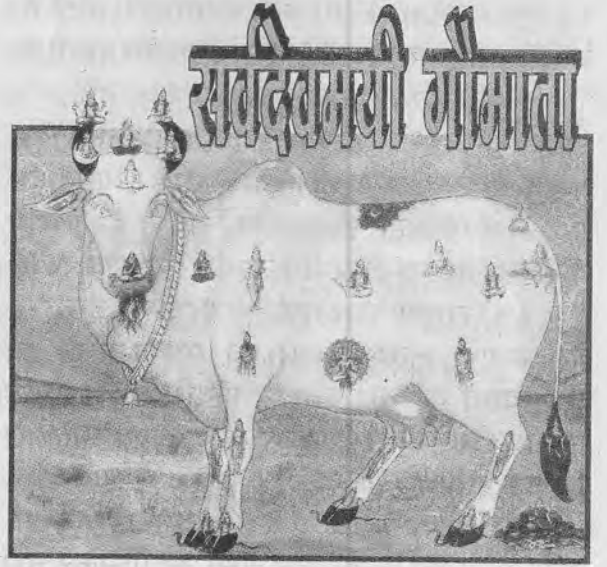
गौमाता : रोग-दोषनिवारिणी

[गतांक का शेष]

घोल : दही में पानी मिलाये बिना ज्यों-का-त्यों मलाई सहित मथने पर तैयार हुए मट्ठे को घोल कहते हैं। इसमें बूरा या चीनी डालकर पीने पर यह पके मीठे आम के समान स्वाद तथा गुणवाला हो जाता है।

मथित : दही के ऊपर की मलाई बिना पानी मिलाये मथने पर जो मट्ठा तैयार होता है उसे मथित कहते हैं। ऐसा मट्ठा हल्का, ग्राही, कसैला, खट्टा, पाक में तथा रस में मधुर, पाचक, अग्नि बढ़ानेवाला, पोषक, उष्णतीय, वातनाशक और गृहणी रोगों के लिए सेवन करने योग्य है।

तक्र : दही में चौथाई पानी मिलाकर मथने से तक्र तैयार होता है। इसे ही मट्ठा कहते हैं। यह सबसे गुणकारी एवं सेवन करने योग्य है।

उदश्वित : दही में आधा पानी मिलाकर मथने पर तैयार हुआ मट्ठा उदश्वित कहलाता है। यह कफकारी, बलवर्धक तथा आमनाशक होता है।

छाछ : दही को मथकर मक्खन निकाल लिया जाय और पानी मिलाकर मथा जाय तो छाछ बनती है। छाछ शीतल, हल्की, पित्तनाशक, प्यास, वात

को नष्ट करनेवाली और कफ बढ़ानेवाली होती है। उसमें नमक डालकर पीने से पाचनशक्ति बढ़ती है।

गोदधि का समावेश पंचामृत (दूध, दही, घी, गोबर, गोमूत्र) तथा गोषडंग (दूध, दही, घी, गोबर, गोमूत्र, गोगेनन) बनाने में किया जाता है। आयुर्वैदिक ग्रंथों में इनके बहुत से उपयोग निर्दिष्ट हैं। गोदधि तथा मट्ठा के कुछ औषधीय उपयोग निम्न प्रकार हैं :

(१) लघु गंगाधर चूर्ण : नागरमौथा, इन्द्र जौ, बेल का गूदा, लोध्र, मोचरस एवं धाय के फूल... इन छः पदार्थों का चूर्ण बनाकर गोदधि के साथ गुड़ मिलाकर पीने से सभी प्रकार के दस्त एवं अतिसार में लाभ होता है।

(२) अजमोदादि चूर्ण : अजमोदा, मोचरस, शुंठी, धाय का फूल... इन चारों को पीसकर चूर्ण बनाकर गोदधि के साथ अच्छी तरह फेंटकर सेवन करने से पानी की धारा के समान अतिसार भी ठीक हो जाता है।

(३) गोदधि के साथ ईसबगोल लेने पर दस्त बंद हो जाते हैं।

(४) गैस, अर्श (बवासीर) : गरिष्ठ, बासी, अधिक तला हुआ तथा मसालेयुक्त आहार लेने से ये रोग उत्पन्न होते हैं। अर्श के लिए मट्ठा से सस्ती और अच्छी कोई औषधि नहीं है। मट्ठा में हींग, जीरा और सेंधा नमक डालकर पीने से उक्त रोगों में लाभ होता है। ऐसा मट्ठा रुचिकारक, पौष्टिक, बलवर्धक और वातशूल को नष्ट करता है।

(५) पेशाब की रुकावट : गुर्दे, मूत्रवाहिनी नलिका, मूत्राशय तथा शिश्न में पथरी के कारण या सूजन आने पर पेशाब नहीं उतरता है। इसके लिए मट्ठा को गुड़ के साथ पीने से पेशाब की रुकावट दूर हो जाती है।

(६) पाण्डुरोग या पीलिया : यह प्रदूषित पानी तथा अन्य कारणों से उत्पन्न होनेवाला रोग है जिसमें रोगी का शरीर पीला, निर्बल, निस्तेज तथा कांतिहीन हो जाता है। मट्ठा में चित्रक (चीता) का चूर्ण डालकर सेवन करने से पीलिया रोग में लाभ होता है। (क्रमशः)

वर्षा ऋतुचर्या

वर्षा ऋतु से सूर्य का दक्षिणायन हो जाता है और 'विसर्गकाल' शुरू होता है।

विसृजति ददाति पृथिव्याः सौम्यांशं प्राणीनां बलं चेति विसर्गः। दक्षिणायन काल पृथ्वी को सौम्यांश और प्राणियों को बल देता है अतः इसे विसर्गकाल कहते हैं।

वर्षा ऋतु के आरंभ के दिनों में वर्षा का जल गर्मी से तप्त हुई भूमि पर गिरता है तो भूमि से भपके छूटते हैं। इन दिनों जल का अम्ल-विपाक होने से हमारी जठराग्नि (पाचक अग्नि) अत्यंत क्षीण हो जाती है। इससे वर्षाकाल में खासकर वात दोष कुपित रहता है।

आहार : इन दिनों में ऐसा आहार नहीं लेना चाहिए जो देर से पचता हो, अपच करता हो। ऐसा आहार लेने से वात कुपित हो जाता है जिससे गैस की तकलीफ, पेट फूलना, जोड़ों में दर्द होना, दमा यानी श्वास की तकलीफ, गठिया आदि की शिकायत हो जाती है। बासी, रूखे और उष्ण प्रकृति के पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।

इन दिनों गाय-भैंस कच्ची घास खाते हैं इससे उनका दूध दूषित रहता है इसलिए श्रावण मास में दूध, हरी पत्तीवाली शाक-सब्जी और भादों में छाछ का सेवन करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

वर्षा ऋतु में छिलकेवाली मूँग की दाल में पंचकोल (सोंठ, पीपल, पीपलामूल चव्य, और चित्रक (चीते) की छाल) का चूर्ण डालकर खाना हितकारी होता है।

इन्हें समभाग में मिलाकर, कूट-पीसकर शीशी में रख लेना चाहिए और दाल बनते समय १-२ चम्मच (लगभग ५-१० ग्राम) डालकर दाल बनानी चाहिए।

आम और मक्का (भुट्टा)

इस मौसम में आम और मक्का (भुट्टा) का सेवन करने में कुछ सावधानियाँ रखनी चाहिए।

आम : आम खट्टा न हो, पाल से उतरा हुआ, बदबूवाला और खराब स्वाद का न हो। इसे चूसकर खाना चाहिए। आम का रस निकालकर आमरस बनाया व खाया जाता है। यदि एक वक्त के आहार में सुबह या शाम केवल आम चूसकर दूध पिया जाय तो ४० दिन में शरीर में बहुत बल-वर्ण बढ़ता है और शरीर पुष्ट व सुडौल हो जाता है। दुर्बल-पतले बच्चों के लिए, वृद्धों के लिए, कमजोरों के लिए आम धातुवर्धक व पौष्टिक है।

बाजार में बिकनेवाला डिब्बाबंद आम का रस बासी होने के कारण स्वास्थ्य के लिए हितकारी नहीं होता है।

मक्का (भुट्टा) : नरम व दूधिया दानेवाले ताजे भुट्टे सेंककर खाना चाहिए। इन्हें खूब चबा-चबाकर खाना चाहिए। भुट्टा खाकर छाछ पीने से ये जल्दी हजम हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त पाचनशक्ति अच्छी हो यह जरूरी है वरना दस्त, अतिसार आदि की शिकायत हो जाती है।

विहार : इन दिनों मच्छरदानी लगाकर सोना उचित है ताकि मच्छर न काट सकें और मलेरिया आदि रोगों से बचाव हो सके।

इन दिनों शरीर की साफ-सफाई का पूरा ध्यान रखना चाहिए और प्रतिदिन धुले हुए वस्त्र पहनने चाहिए ताकि चर्मरोग न हो। अशुद्ध और दूषित जल का सेवन करने से चर्मरोग, पीलिया, हैजा, अतिसार जैसे रोग हो जाते हैं। प्रतिदिन शुद्ध जल से स्नान कर शरीर को खूब रगड़कर पोंछने के बाद ही धुले हुए वस्त्र पहनने चाहिए।

इन दिनों ज्यादा परिश्रम या व्यायाम नहीं करना चाहिए। दिन में सोना, वर्षा में ज्यादा देर तक भीगना, नदी में स्नान करना और गीले वस्त्र जल्दी न बदलना हानिकारक होता है। इन दिनों अल्प मात्रा में शहद का सेवन उपयोगी रहता है। वर्षा ऋतु में तेलमालिश या उबटन करके स्नान करना और हल्का वस्त्र पहनना चाहिए।

विशेष : वर्षाकाल में रसायन के रूप में बड़ी हरड़ के चूर्ण में समान मात्रा में पिसा हुआ सेंधा नमक मिलाकर प्रातःकाल फाँकना चाहिए। यह चूर्ण १-२ (छोटे) चम्मच जितनी मात्रा में फाँककर ठण्डा पानी पी लेना चाहिए।

*

शतधौत घृत

शतधौत घृत माने सौ बार धोये हुए घी की मालिश करने से चमत्कारिक रूप से हाथ-पैर की जलन और सिर की गर्मी शांत होती है। सामान्य ज्वर हो या सन्निपात, कैसा भी ज्वर इससे शांत होता है।

बनाने की विधि : एक काँसे के बड़े बर्तन में लगभग २५० ग्राम घी लें। उसमें लगभग २ लिटर शुद्ध ठंडा पानी डालें और हाथ से अच्छी तरह से हिलायें। मानो, घी और पानी का मिश्रण कर रहे हों।

अब सावधानीपूर्वक पानी को निकाल दें। इस तरह से सौ बार ताजा पानी लेकर घी को धो डालें और फिर पानी को निकाल दें। अब जो घी बचता है वह अत्यधिक शीतलता प्रदान करनेवाला होता है। हाथ, पैर और सिर पर उसकी मालिश करने से गर्मी शांत होती है। कई वैद्य घी को १२० बार भी धोते हैं।

सावधानी : यह घी एक प्रकार का धीमा जहर है इसलिये भूल से भी इसका प्रयोग खाने में न करें।

*

अरंडी कितनी अधिक उपयोगी

परिचय : किसी भी स्थान पर और किसी भी ऋतु में उगनेवाला और कम पानी से पलनेवाला अरंडी का वृक्ष गाँव में तो खेतों का रक्षक और घर का पड़ोसी बनकर रहनेवाला होता है।

खास तौर पर अरंडी की जड़ और पत्ते दवाई

में प्रयुक्त होते हैं । इसके बीजों में से जो तेल निकलता है उसे 'अरंडी का तेल' कहते हैं। वातनाशक, स्तब्धता दूर करनेवाला और शरीर को गतिशील बनानेवाला होने के कारण इसे अरंडी नाम दिया गया है ।

गुण-दोष : गुण में अरंडी वायु तथा कफ का नाश करनेवाला, रस में तीखा, कसैला, मधुर, उष्णवीर्य और पचने के समय कटु होता है। यह गरम, हल्का, चिकना एवं जठराग्नि, स्मृति, मेधा, स्थिरता, कांति, बल-वीर्य और आयुष्य को बढ़ानेवाला होता है।

यह उत्तम रसायन है और पूरे हृदय के लिये हितकर है। अरंडी के तेल का विपाक (जब पचता है) मधुर होता है। यह तेल पचने में भारी और कफ करनेवाला होता है।

आमवात, वायु के तमाम ८० प्रकार के रोगों, शूल, सूजन, वायुगोला, नेत्ररोग, कृमिरोग, मूत्रावरोध, अण्डवृद्धि, आफरा, पीलिया, कब्जियत, संधिवात, गाँठ, श्वास, चर्मरोग, जीर्णज्वर, मलेरिया, साइटिका, पांडुरोग, कटिशूल, शिरःशूल, बस्तिशूल, हृदयरोग आदि रोगों को मिटाता है।

अरंडी के बीजों का प्रयोग करते समय बीज के बीच का जीभ जैसा भाग निकाल देना चाहिये क्योंकि यह जहरीला होता है।

वायु के रोगों, वायुगोला और शूल के लिये यह श्रेष्ठ है। दूसरे अवयवों की अपेक्षा आँतों और जोड़ों पर अरंडी का सबसे अधिक असर हो सकता है।

विभिन्न रोगों में अरंडी के प्रयोग

(१) कटिशूल (कमर का दर्द): कमर पर अरंडी का तेल लगाकर, अरंडी के पत्ते फैलाकर खाट-सेंक करना चाहिए। अरंडी के बीजों का जीभ निकाला हुआ भाग गर्भ, १० ग्राम दूध में खीर बनाकर सुबह-शाम लेना चाहिए।

(२) शिरःशूल : वायु से हुए सिर के दर्द में अरंडी के कोमल पत्तों को उबालकर बाँधना चाहिये तथा सिर पर अरंडी के तेल की मालिश करनी चाहिये और सोंठ के काढ़े में ५ से १० ग्राम अरंडी का तेल डालकर पीना चाहिये।

(३) दाँत का दर्द : अरंडी के तेल में कपूर मिलाकर कुल्ला करना चाहिये और दाँतों पर मलना चाहिये।

(४) योनिशूल : प्रसूति के बाद होनेवाले योनिशूल को मिटाने के लिए योनि में अरंडी के तेल का फाहा रखें।

(५) उदरशूल : अरंडी के पके हुए पत्तों को गरम करके पेट पर बाँधने से और हींग तथा काला नमक मिला हुआ अरंडी का तेल खाने से तुरंत ही राहत मिलेगी।

(६) सायटिका (पैरों का वात) : एक कप गोमूत्र के साथ एक चम्मच अरंडी का तेल रोज सुबह-शाम लेने से और अरंडी के बीजों की खीर रोज खाने से आराम होगा।

(७) कब्जियत : प्रतिदिन सुबह सोंठयुक्त गरम दूध में अरंडी का तेल डालकर पीने से कब्ज दूर होती है।

(८) हाथ-पैर फटने पर : हाथ, पैर, होंठ इत्यादि सर्दियों में फट जाते हों तो अरंडी का तेल गरम करके लगाना चाहिए और उसका जुलाब लेते रहना चाहिए।

(९) संधिवात : अरंडी के तेल में सोंठ मिलाकर, गरम करके, जोड़ों पर (सूजन न हो तो) मालिश करनी चाहिये। सोंठ के काढ़े में अरंडी का तेल डालकर पीना चाहिये और अरंडी के पत्तों का सेंक करना चाहिए।

आमवात में भी यही प्रयोग करना चाहिए।

(१०) पक्षाघात और मुँह का लकवा : सोंठ डाले हुये गरम पानी में १ चम्मच अरंडी का तेल डालकर पीना चाहिये। अरंडी के तेल की मालिश करनी चाहिए और सेंक करना चाहिए।

(११) कृमिरोग : वायवडिंग के काढ़े में रोज सुबह अरंडी का तेल लें।

(१२) अनिद्रा : अरंडी के कोमल पत्ते दूध में पीसकर ललाट और कनपटी पर गरम-गरम बाँधना चाहिये। पाँव के तलुवों और सिर पर अरंडी के तेल की मालिश करनी चाहिये।

(१३) गाँठ : अरंडी के बीज और हरड़े समान

भाग में पीसकर बाँधने से नयी गाँठ बैठ जायेगी और अगर लम्बे समय की पुरानी गाँठ होगी तो पक जायेगी।

(१४) आंतरिक चोट : अरंडी के पत्तों का काढ़ा हल्दी डालकर दर्दवाले स्थान पर गरम-गरम डालें और उसके पत्ते उबालकर हल्दी डालकर चोटवाले स्थान पर बाँधें।

(१५) आँखें आना : अरंडी के कोमल पत्ते दूध में पीसकर, हल्दी मिलाकर, गरम करके पट्टी बाँधें।

(१६) स्तनशोथ : स्तनपाक, स्तनशोथ और स्तनशूल में अरंडी के पत्ते पीसकर लेप करें।

(१७) अंडवृद्धि : नयी हुई अंडवृद्धि में एक-दो चम्मच अरंडी का तेल, पाँच गुने गोमूत्र में डालकर पियें और अंडवृद्धि पर अरंडी के तेल की मालिश करके हल्का सेंक करना चाहिए अथवा अरंडी के कोमल पत्ते पीसकर गरम-गरम लगाना चाहिये और एक मास तक एक चम्मच अरंडी का तेल देना चाहिये।

(१८) आमातिसार : सोंठ के काढ़े में अथवा गरम पानी में अरंडी का तेल देना चाहिये अथवा अरंडी के तेल की पिचकारी देनी चाहिए। यह उत्तम इलाज है।

(१९) गुदभ्रंश : बालक को गुदभ्रंश निकलती हो तो अरंडी के तेल में डुबोयी बत्ती से उसे दबा दें एवं ऊपर से रूई रखकर लंगोट पहना दें।

(२०) अपैण्डिक्स : प्रारम्भिक अवस्था में रोज सुबह सोंठ के काढ़े में अरंडी का तेल दें।

(२१) हाथीपाँव (श्लीपद रोग) : एक चम्मच अरंडी के तेल में पाँच गुना गोमूत्र मिलाकर १ माह तक लें।

(२२) रतौंधी : अरंडी का १-१ पत्ता खायें और उसका १-१ चम्मच रस पियें।

(२३) वातकंटक : पैर के तलुवे में शूल निकलता हो तो उसे दूर करने के लिये सोंठ के काढ़े में या गरम पानी में अरंडी का तेल डालकर पियें तथा अरंडी के पत्तों को गरम करके पट्टी बाँधें।

(२४) तिल : शरीर पर जन्म से ही तिल हों तो उसे दूर करने के लिये अरंडी के पत्तों की डंडी पर थोड़ा कली चूना लगाकर उसे तिल पर घिसने से खून निकलकर तिल गिर जाते हैं।

(२५) ज्वरदाह : ज्वर में दाह होता हो तो अरंडी के शीतल कोमल पत्ते बिस्तर पर बिछायें और शरीर पर रखें।

(२६) मेदवृद्धि (मोटापा) : अरंडी के पत्तों का क्षार तैयार करके उसकी दो ग्राम की मात्रा में उतनी ही हींग मिलाकर चावल के धोवन के साथ नित्य लेते रहने से मेद (चरबी) का नाश होता है।

*

सावधान !

घाव भरने के लिये एन्टीबायोटिक्स लेने की कोई जरूरत नहीं है।

किसी भी प्रकार का घाव हुआ हो, टाँके लगवाये हों या न लगवाये हों, ऑपरेशन का घाव हो, अंदरूनी घाव हो या बाहरी हो, घाव पका हो या न पका हो लेकिन आपको एन्टीबायोटिक्स लेकर जठरा को, आँतों को तथा लीवर-किडनी को साइड-इफैक्ट द्वारा बिगाड़ने की कोई जरूरत नहीं है। वरन् निम्नांकित दी हुई पद्धति का अनुसरण करें :

एक से तीन दिन का उपवास करें। ध्यान रखें कि उपवास यानी केवल उबालकर ठंडा किया हुआ या गुनगुना गर्म पानी ही पीना है। अन्य कोई भी वस्तु खानी-पीनी नहीं है। दूध भी नहीं लेना है।

उपवास के बाद जितने दिन उपवास किया हो उतने दिन केवल मूँग को उबालकर जो पानी बचता है वही पानी पीना है। मूँग का पानी क्रमशः गाढ़ा कर सकते हैं।

मूँग के पानी के बाद क्रमशः मूँग, खिचड़ी, दाल-चावल, रोटी-सब्जी इस प्रकार सामान्य खुराक पर आ जाना है।

कब्ज जैसा हो तो रोज एक चम्मच हरड़े सुबह अथवा रात को पानी के साथ लें। शरीर की प्रकृति हमेशा पकने की हो तो त्रिफलागूगल नामक ३-३ गोली दिन में तीन बार पानी के साथ लेना चाहिये।

*

संत-कृपा से संतान की प्राप्ति

हमारी शादी को करीब ९ साल हो गये हैं। मई १९८९ से १९९४ तक, पाँच साल में चार बार साढ़े तीन से साढ़े पाँच महीने के गर्भपात हो गये।

हमने सभी तरह की डॉक्टरी जाँच करवायी। जैसे, लेप्रोस्कौपी, व्ही. डी. आर. एल., एच. एस. जी., ब्लॅड टेस्ट आदि। सभी रिपोर्ट निल (Nill) आती थी, फिर भी गर्भपात होता था। हमने मालेगाँव के सभी विशेषज्ञ डॉक्टरों को दिखाया किन्तु सब व्यर्थ। गर्भपात रोकने के लिए तीन दिन में ७२ इंजेक्शन लगवाये। औरों के कहने पर बाबा, बुवा, धागा-डोरा, गंडा-ताबीज इत्यादि भी किया किन्तु वह सब भी व्यर्थ हो गया। हम बिल्कुल निराश हो गये।

उसी समय एक साधक भाई ने हमें पूज्य बापू के बारे में बताया। हमने पूज्य बापू की कुछ किताबें पढ़ीं एवं नासिक में ६ अप्रैल, १९९४ को दीक्षा ली। इसके पश्चात् १३ अप्रैल, १९९४ में अमदाबाद आश्रम में शिविर का लाभ लिया। बाद में हम पति-पत्नी दोनों ने मंत्रानुष्ठान किया। प्रभु की कृपा से गर्भ ठहर गया। फिर हमने निश्चय किया कि डॉक्टर की कोई भी दवा नहीं लेंगे और वैसा ही किया।

१० जून, १९९५ को हमें पूज्य बापू की कृपा से कन्या-रत्न की प्राप्ति हुई। यह केवल पूज्य बापू की कृपा का ही चमत्कार है। पूज्य बापू के श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम! *- सौ. शोभा प्रमोद भावसार*

आँगनवाड़ी सेविका, हरि ॐ निवास, सटाणा नाका, मालेगाँव-४२३२०३ (महाराष्ट्र).

मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि पूज्य श्री आसारामजी बापू के दुर्लभ प्रवचनों की पत्रिका 'ऋषि प्रसाद' से जनमानस जागृत व लाभान्वित हो रहा है।

भारतवर्ष की इस महान् भूमि पर जहाँ राम, कृष्ण, गौतम आदि महापुरुषों का जन्म हुआ है उसी धरा पर पूज्यश्री का नवनिर्माण का प्रयास निश्चय ही प्रशंसनीय है। पूज्यश्री के अमृतमय प्रवचनों, प्रयासों, कुशल मार्गदर्शन व निर्देशन से निश्चय ही हम इस भौतिकवादी युग में अपनी महान् संस्कृति की ओर लौट रहे हैं।

मुझे आशा है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के माध्यम से इस भौतिकवादी युग में लोग पूज्य श्री आसारामजी बापू के प्रवचनों का लाभ उठाकर नवजागरण, विश्व-शांति तथा **वसुधैव कुटुम्बकम्** के महान् लक्ष्य की ओर अग्रसर होंगे। इस महान् कार्य के लिए मैं अपने सह-पदाधिकारियों सहित अपनी मंगल कामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

- भवेत गर्ग
संयुक्त सचिव
अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (JAGADHRI).

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ६९ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जुलाई तक अपना नया पता भिजवा दें।

अमदावाद से दिनांक : १८ मई '९८ को पूज्य बापू पंचेड़ आश्रम पधारे । वहाँ वे एकान्तवास में रहते और शाम को दर्शन हेतु आए हुए भक्तों को अमृत-वचनों का लाभ देकर उन्हें सत्संग का दिव्य ज्ञान प्रदान करते । पूज्यश्री के पंचेड़ आगमन से सारे मालवा क्षेत्र में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। अपने प्यारे सद्गुरुदेव की झलक पाने के लिए प्रान्त के विभिन्न भागों से श्रद्धालुओं का पंचेड़ आगमन शुरू हो गया।

इन्दौर : इसी बीच इन्दौर के साधकों द्वारा इन्दौरवासियों को दर्शन-सत्संग का लाभ मिले इसके लिए पूज्य बापू से विनती की गयी। यद्यपि लगातार सत्संग-कार्यक्रमों के बाद पूज्य बापू अब पूर्णतः एकान्त में थे लेकिन जब साधकों के हृदय से अपने सद्गुरु के दर्शन की पुकार उठे तो भला गुरुदेव कहाँ एकान्त में समाधिस्थ रहते ! पूज्यश्री अल्प एकान्तवास के लिए इन्दौर आश्रम पधारे । यहाँ भी शाम को हजारों की संख्या में एकत्रित होनेवाले श्रद्धालुओं को सत्संग का लाभ मिलता । यहाँ बिना किसी आयोजन के ही सत्संग का कार्यक्रम हो गया ।

जावरा : पूज्यश्री ३० मई की रात्रि को पुनः पंचेड़ पधारे । ३१ मई की शाम को जावरा में श्री सुरेशानंदजी के सान्निध्य में चल रहे चार दिवसीय गीता भागवत सत्संग समारोह की पूर्णाहुति के लिए पूज्यश्री जावरा पधारे। तकरीबन सत्रह वर्षों के बाद यहाँ आयोजित सत्संग में जावरावासी पूज्य बापू की अमृतवाणी को सुनकर अभिभूत हो गये । जावरा में सत्संग-पूर्णाहुति का भव्य आयोजन अपने आपमें एक अनूठा गौरव बन गया । यहाँ क्षेत्रीय सांसद डॉ. लक्ष्मीनारायण पाण्डे, पूर्व प्रदेश गृहमंत्री भारतसिंहजी सहित अनेक गणमान्य नागरिकों ने भी सत्संग का लाभ लिया ।

पंचेड़ : पंचेड़ आश्रम में दिनांक : ३१ मई से २ जून तक विद्यार्थी ध्यान योग साधना शिविर का आयोजन किया गया था । इस तीन दिवसीय विद्यार्थी शिविर में हजारों विद्यार्थियों ने पूज्यश्री से जीवन में संयम, सेवा, साधना, सदाचार, स्नेह जैसे सद्गुणों का महत्त्व समझकर जीवन को ओजस्वी-तेजस्वी बनाने का संकल्प लिया । यद्यपि शिविर की पूर्णाहुति २ जून को होनेवाली थी किन्तु पूज्यश्री ने एक दिन और शिविर बढ़ाकर विद्यार्थियों को लाभ दिया । पूर्णाहुति के दिन प्रातः पूज्य बापू ने विद्यार्थियों को सारस्वत्य मंत्र देकर बुद्धि को तीक्ष्ण बनाने की कुंजियाँ सिखायीं ।

प्रदेश के नवनियुक्त केबीनेट मंत्री तथा राज्य के धर्मस्व-संस्कृति मंत्री पं. मोतीलाल दवे ने पूज्य बापू से आशीर्वाद प्राप्त किया ।

पंचेड़ आश्रम में विद्यार्थी शिविर के पश्चात् आरंभ हुआ सात दिवसीय विशिष्ट आध्यात्मिक वेदान्त शक्तिपात साधना शिविर । देश के विभिन्न प्रान्तों से आये हुए हजारों साधकों ने इस शिविर में नयी आध्यात्मिक ऊँचाइयों का प्रत्यक्ष अनुभव पूज्यश्री की कृपा से किया । अनेकों साधकों के अनुभव थे कि इस विशेष शिविर से सात दिन में वह आध्यात्मिक लाभ प्राप्त हुआ जो सात जन्मों में भी संभव प्रतीत नहीं होता था । पूज्यश्री ने शिविरार्थियों को ध्यान की कई सरल-सहज पद्धतियाँ सिखाकर उनको नवीन आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश कराया ।

सारे देश के साथ पंचेड़ में भी रोहिणी नक्षत्र का सूर्य तप रहा था। भीषण गर्मी के बीच भी, सुविधाओं के अभाव में भी आत्मानुभूति के जिज्ञासु साधक लगे रहे । जब ध्यान योग के जरिये जन्म-जन्मांतर की हृदय की तपन शान्त हो रही है तो फिर बाहर की तपन क्या मायने रखती है ? शिविर के प्रारंभ के तीन दिन तक सूर्य देवता का गुस्सा जरूर सातवें आसमान पर था किन्तु बाद में शीतल हवा, आकाश में मँडराते बादलों के झुण्ड ने शीतलता का वातावरण बना दिया। दिनांक : ४ से ७ जून तक आमजनता के लिए सत्संग का आयोजन किया गया था जिसमें दूर-दूर से आये हुए श्रद्धालुओं ने सत्संग-सरिता में गोता लगाकर अपने मानव जीवन को सफल बनाया । सत्संग में आनेवालों के लिए समिति द्वारा विशेष व्यवस्था की गयी थी ।

ईरान के विख्यात फिजिशियन श्री बबाक अग्रानी भारत में आध्यात्मिक अनुभवों के लिए आये हुए थे। पूज्यश्री के इन्दौर प्रवास के दौरान श्री बबाक अग्रानी ने पूज्यश्री के

दर्शन कर जब अपने अनुभव को फलीभूत (Implemented) होते देखा तो वे भी पंचेड़ आश्रम पहुँच गये। श्री अग्रानी जो दो दिन रुककर वापस स्वदेश लौटनेवाले थे, वे पूरे ग्यारह दिन तक पंचेड़ आश्रम में ठहरे। उन्होंने विद्यार्थी शिविर के साथ इस विशिष्ट शिविर का भी लाभ लिया। श्री अग्रानी पूज्यश्री के सान्निध्य में हुई अनुभूतियों के बारे में क्षेत्रीय समाचार पत्र 'चेतना' को दी हुई मुलाकात में कहते हैं :

''यदि पूज्य बापू जैसे संत हर देश में हो जायें तो यह दुनिया स्वर्ग बन सकती है। ऐसे महान् पुरुष के श्रीचरणों में शान्ति से बैठ पाना हमारे लिए कठिन है लेकिन फिर भी जब सत्संग में आनंद आता है तो कुछ पता नहीं चलता। सचमुच पूज्य बापू कोई साधारण संत नहीं हैं।''

शिविर के दौरान श्री अग्रानी ने सारस्वत्य मंत्र की दीक्षा के साथ मंत्रदीक्षा भी ली।

आश्रम में चल रहे शिविर में एकादशी के दिन शिविरार्थियों ने पूज्य बापू के दर्शन आश्रम से थोड़ी दूरी पर स्थित टेकरी पर किये।

आश्रम में विद्यार्थी शिविर, गीता भागवत सत्संग समारोह के साथ आयोजित इस विशेष ध्यान योग साधना शिविर से संपूर्ण क्षेत्र में एक नई आध्यात्मिक क्रान्ति का जन्म हुआ जिसके प्रत्यक्ष उदाहरण क्षेत्रीय समाचार पत्र थे। शिविर की पूर्णाहुति पर मंत्रदीक्षा दी गयी। शिविर में पूज्य श्री नारायण स्वामी की गरिमामय उपस्थिति का भी शिविरार्थियों को भरपूर लाभ मिला। रतलाम में 'चेतना टी. वी.' पर समाचारों में जब पूज्यश्री के सत्संग के आयोजन का समाचार रतलामवासियों को देखने-सुनने को मिला तो वे लोग भी कौतूहलवश पंचेड़ आश्रम आये। स्थानीय जनता भी स्वयं को सत्संग के प्रसाद से वंचित नहीं रख पायी और वह भी हरिनाम के रंग में रंगकर अपनी सुषुप्त चेतना को आन्दोलित कर गयी। इस विशेष शिविर का समापन १० जून को पूर्णिमा-दर्शन के बाद हुआ। इसके पश्चात् पूज्य बापू उज्जैन प्रस्थान कर गये।

११ जून के दिन उज्जैन में कोई सत्संग-कार्यक्रम आयोजित नहीं था फिर भी हजारों की तादाद में भक्तजन पूज्य बापू के दर्शनार्थ उज्जैन आश्रम में उमड़ पड़े।

देवास : कई वर्षों की तपस्या के बाद देवास की जनता को पूज्य बापू के सत्संग एवं सान्निध्य का अमूल्य लाभ मिला। दिनांक : ८ से ११ जून के दौरान पू. बापू के कृपापात्र साधक शिष्य श्री सुरेशानंदजी के पावन सान्निध्य में देवास की जनता ने सत्संगामृत का पान किया। इस सत्संग समारोह में दिनांक : ११ की शाम को पूज्यश्री ने स्वयं पधारकर जनता को अमृतवाणी का लाभ उपलब्ध कराया एवं दिनांक : १२ को सत्संग समारोह की पूर्णाहुति की।

दिनांक : १२ के दिन आनंददाता पूज्य बापू के पावन करकमलों के द्वारा देवास में वृद्धाश्रम का शिलान्यास हुआ।

शाम को पूज्यश्री पुनः उज्जैन पधारे। वहाँ प्रातः ८ से ९ के दौरान साँई लीलाशाह धाम धर्मशाला (सिंधी समाज) का शिलान्यास करते हुए पूज्यश्री ने कहा :

''धर्मशाला के नाम पर जो लोग यहाँ आते-जाते रहेंगे उनकी जिह्वा पर संतश्री का नाम आता रहेगा।''

तन से सेवा कीजिये मन से भलो विचार।
धन से इस संसार में करिये परोपकार॥

*

धन्य हुई यह देवास नगरी पूज्य बापूजी पधारे हैं । वृद्धाश्रम के शिलान्यास निमित आकर जगाये भाग्य हमारे हैं ॥
देवास में पूज्यश्री के पावन करकमलों द्वारा वृद्धाश्रम का शिलान्यास कार्यक्रम संपन्न हुआ ।

* जन सेवा ही ईश्वर सेवा *

कंडला (कच्छ - गुजरात) में आये हुए समूद्री तूफान से पीडितों को मदद करने हेतु दौड पड़ी आश्रम की गाडियाँ । साथ ही जामनगर के कलेक्टर के साथ राहत कार्य हेतु चर्चामग्न आश्रम के इंजिनियर्स ।

REGISTRED WITH R.N.I. UNDER NO. 48873/91 LICENSED TO POST W/O PRE-PAYMENT : AHMEDABD PSO LICENCE NO. 207 Regd. No. GAMC/1132. BOMBAY, BYCULLA PSO LICENCE NO. 03 Regd. No. MH/MNV-02.